Digitized by Madhuban Trust, Delhi

वैदिक महाव्याकरण

मधुसूदन मिश्र

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

gitized by Madhuban Trust, De

वैदिक महाव्याकरणम्

मधुसूदन मिश्र

Kumar Col. Deoband

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

यह वैदिक महाव्याकरण प्रो० ह्विटनी और प्रो० मेकडोनेल की कृतियों पर आधारित है। पढ़ने वालों को लगेगा कि यह 'सिद्धान्तकौमुदी' की सुलझाई हुई वैदिक स्वर-प्रक्रिया है। यथासम्भव, पाणिनि के सूत्र भी डाल दिये गये हैं। कहीं-कहीं पाश्चात्य विद्वानों की भूलों को भी सुधारा गया है। अब बभूतु, बभूयात्, भूतु, अबभूत् आदि रूप दुरूह नहीं मालूम पड़ेंगे।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

यह वैि
प्रो० मेकडो
वालों को
सुलझाई हुई
पाणिनि के
पाश्चात्य वि
अब बभूतु,
नहीं मालूम

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

श्रीगणेशाय नमः

वैदिक महाव्याकरण

मधुसूदन मिश्र

विद्यानिधि प्रकाशन

दिल्ली

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

प्रकाशक :

विद्यानिधि प्रकाशन

डी–10/1061 (समीप श्रीमहागौरी मन्दिर)
खजूरी खास, दिल्ली–110094

© लेखक

प्रथम संस्करण : 2013

ISBN : 978-93-80651-50-7

मूल्य : 250.00

मुद्रक :
विशाल कौशिक प्रिंटर्स, दिल्ली–110093

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

दो शब्द

दुख के साथ कहना पड़ता है कि आज कल भारत में वेद की पढ़ाई बन्द हो गयी है। जब से अष्टाध्यायी पद्धति को छोड़कर कौमुदी पद्धति पर आये, वेद का ज्ञान शून्य होने लगा, क्योंकि वैदिक और स्वर प्रक्रिया को एक कोने में धकेल दिया गया। पाश्चात्त्य विद्वानों ने भी पहले लौकिक संस्कृत को ही सीखा, पर तुरत वे वैदिक साहित्य की ओर मुड़े। वैदिक भाषा का साक्षात् परिचय प्राप्त कर वे वैदिक व्याकरण लिखने बैठे। उन्होंने देखा कि पाणिनि वैदिक रूपों की तो चर्चा करते हैं, पर वे उस बिन्दु पर नहीं है जहाँ से संस्कृत भाषा के प्रवाह का आरम्भ दिखायी दे। पाणिनि उस प्रवाह के बीचोंबीच हैं, पर ज्यादा आगे की ओर देखते हैं, पीछे की ओर केवल झांकते हैं।

पाश्चात्त्य विद्वान भाषा के आदिकाल तक दौड़ गये। पुराने प्रवाह को कहीं-कहीं क्षीण होते और मिटते भी देखा, किसी नये प्रवाह को जुटते भी देखा। जो रूप ऋग्वेद में फूलते-फलते दीख रहे थे वही अथर्ववेद में मुरझा रहे थे। दूसरी ओर, नये रूपों का जन्म भी हो रहा था।

सबसे पहले प्रो० ह्विटनी का ऐतिहासिक व्याकरण आया। प्रो० मेकडौनेल ने तत्कालीन तमाम व्याकरणों को समेट कर अपना वैदिक व्याकरण लिखा। उसके बाद उसका छात्रोपयोगी संस्करण भी निकाला।

पाश्चात्त्य विद्वान संस्कृत शुरू करने से पहले ग्रीक और लैटिन व्याकरण को पढ़ चुके होते थे। धीरे-धीरे वे संस्कृत व्याकरण को ग्रीक-लैटिन पद्धति पर ले गये। वैदिक व्याकरण तो पाश्चात्त्य विद्वानों की देन है। लेकिन वह ग्रीक-लैटिन पद्धति पर निकला। फलस्वरूप, भारतीय छात्र उसका पूरा लाभ नहीं उठा पाये। एक तो रोमन लिपि होने के कारण, दूसरे ग्रीक-लैटिन पारिभाषिक शब्दों से युक्त होने के कारण भारतीय छात्र उसे नहीं अपना पाये।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

वे सिद्धान्त कौमुदी की स्वर-वैदिक प्रक्रिया से ही सन्तोष करने लगे। पश्चिमी देशों में तो वेद की पढ़ाई ने जोर पकड़ा, पर वहाँ भी यह शिथिल ही होता गया। ग्रीफिथ का ऋग्वेद का अंग्रेजी अनुवाद तथा गेल्दनर का जर्मन अनुवाद आया, और उसके बाद वहाँ भी वेद का अध्ययन बन्द हो गया।

फिर भी वैदिक व्याकरण लिखकर पाश्चात्त्य विद्वानों ने हमारा बहुत उपकार किया है। हिन्दी में ऐसे वैदिक व्याकरण की आवश्यकता है जो पाश्चात्त्य वैदिक व्याकरण का अनुवाद हो, पर ऐसा न लगे कि यह 'मक्षिका स्थाने मक्षिका' है। वे पाणिनीय पद्धति को ग्रीक लैटिन पद्धति में ढाल सकते हैं तो क्या हम ग्रीक-लैटिन पद्धति को पाणिनीय पद्धति में नहीं ढाल सकते हैं? यही हमने किया है। अष्टाध्यायी में तीन सूत्र जोड़ने की हमने धृष्टता भी की है।

पाश्चात्त्य विद्वानों ने यह मान लिया था कि वैदिक भाषा बाहर से आयी। इसलिये अच्छा से अच्छा व्याकरण लिखकर भी वे वैदिक मंत्रों का अटपटा अर्थ बताने लग गये। यह तो गेल्दनर के अनुवाद से प्रकट हो जाता है। प्रो० रोथ ने कहा कि ऋग्वेद पूरी आर्य जाति की संपत्ति है और पाश्चात्त्य विद्वानों को ही उसमें माहिर होने का दावा किया। पर प्रो० रेनू का कहना ज्यादा ठीक है कि वेद के अर्थ को हमें भारतीय दृष्टिकोण से समझना होगा।

हमारा सारा वैदिक साहित्य सिन्धु सभ्यता के नागरिक जीवन की ओर झांकता दिखायी देता है। मंत्र जितना ही गूढ है, झांकी उतनी ही निराली है। ऋग्वेद का मण्डूक सूक्त हमें नौ हजार वर्ष पहले ले जाता है। ऋग्वेद २-४-५ हमें सिन्धुसभ्यता की भयंकर अगलगी की याद दिलाता है। ऋग्वेद १०-१०६ सूक्त उस सभ्यता के नागरिक जीवन का दोष-गुण बताता है। वेदों का अर्थ हमें अपने आप समझना होगा। यह व्याकरण उसी के लिये है। शायद मेरा स्वप्न साकार हो।

बुद्ध पूर्णिमा, दिल्ली — **मधुसूदन मिश्र**

६-५-२०१२

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

भूमिका

जब भाषा का प्रवाह चल पड़ता है तो वह आगे चलता ही रहता है। इस प्रवाह का अन्त तब होता है जब उसके बोलने-वाले नष्ट कर दिये जाते हैं या क्षीण होता हुआ वह प्रवाह किसी अन्य प्रवाह में विलीन हो जाता है। उस प्रवाह में तीन पड़ाव बताये गये हैं। पहले पड़ाव तक उस भाषा में व्याकरण नहीं होता। सभी शब्द परस्पर स्वतंत्र होते हैं। वाक्य छोटा होता है जिनमें शब्दों को आगे पीछे रखकर जरूरत की बातें कह देते हैं। भाषा के उस पड़ाव को पृथक्पद कहते हैं।

बदलते हुए समाज की अवश्यकताओं के अनुसार भाषा में व्याकरण आने लगता है। किसी खास भाव को व्यक्त करने के लिये कुछ खास शब्द महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं और व्याकरण के तत्त्व बनजाते हैं। जैसे, 'बन्दर' 'एक' का वाचक है। उसमें 'बहुत' का भाव लाने के लिये कहते हैं 'बन्दर-लोग'। भाषा के इस पड़ाव को कहते हैं युक्तपद। प्रागैतिहासिक संस्कृत में आ-ह. आ-स आदि रूप युक्तपद के उदाहरण हैं जिसे कोई नहीं जानते। बाद में गच्छति स्म, निपतति पुरा आदि ऐसे ही प्रयोग आये, जिन्हें भी लोग युक्तपद के उदाहरण नहीं मानते।

आगे चलकर सारे भाव व्याकरण के विशेष तत्त्वों से ही व्यक्त होने लगते हैं। पर वे तत्त्व कालक्रमेण शब्दों में इस तरह सट जाते हैं कि दोनों को अलग करते समय दोनों के अंग कुछ छिल जाते हैं। भाषा के इस पड़ाव को श्लिष्टपद कहते हैं। भाषा का यही रूप सर्वोत्तम माना जाता है। भाषा के इसी रूप में उत्तम से उत्तम विचारों की अभिव्यक्ति हुई है।

भारतीय इतिहास में सरस्वती नदी के किनारे जो सभ्यता उभरी उसकी भाषा एकाक्षरा पृथक्पदा थी। बाद में उसी भाषा में व्याकरण के तत्त्व

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

आने लगे। भाषा युक्तपदा हो गयी। यह दूसरा पड़ाव था। वैदिक भाषा उसी प्रवाह का तीसरा पड़ाव है। संस्कृत में पृथक्पद, युक्तपद और श्लिष्टपद - सभी के उदाहरण विद्यमान हैं।

वैयाकरण किसी खास बिन्दु पर रुककर उसका विश्लेषण शुरू कर देते हैं। पाणिनि जिस समय अपना व्याकरण लिख रहे थे उस समय श्लिष्टपद प्रवाह बहुत दूर तक बह चुका था। वैदिक भाषा बहुत पीछे रह गयी थी। उसके बभूतु, भूतु, बभूयात् आदि क्रियारूप अप्रचलित हो चुके थे। ऐसे रूपों का विश्लेषण पाणिनि ने आवश्यक नहीं समझा। वेद के व्याख्याता लोग अन्तिम विभक्ति के द्वारा रूपों को किसी तरह समझ लेते थे और उसका अर्थ बता देते थे। सायण 'देवो देवेभिरागमत्' का अर्थ तो समझ गये, पर गमत् में गच्छतु को देखा, उसका छत्वाभाव किया (गमतु) और फिर उकार का लोप किया (गमत्)। लेकिन इस तरह वैदिक रूपों की व्याख्या नहीं चल सकती।

पाणिनि ने संस्कृत भाषा का विश्लेषण उसे श्लिष्टपदा समझकर किया। उपनदि, अधिहरि आदि युक्तपद के उदाहरण हैं, पर उन्होंने उन्हें अव्ययीभाव समास कह कर व्याख्या की। पृथक्पद के तत्त्व ह आदि को उन्होंने देखा ही नहीं।

प्रो० ह्विटनी, मेकडौनेल आदि पाश्चात्त्य विद्वान ग्रीक और लैटिन व्याकरण जानते थे। पाणिनि से पहले की वैदिक भाषा को भी स्वयं पढ़ने लगे थे। उन्होंने देखा कि लङ् लेट् लोट् और लिङ् विभक्तियाँ केवल लट् के आधार (भव-आदि) पर ही नहीं लगती (जिससे भव-ति, अ-भव-त्, भवाति, भवतु भवेत् रूप बनते हैं), बल्कि लिट् के आधार (बभू-आदि) पर भी लगती है, जिससे बभूव, अ-बभू-त्, बभूवत्, बभूतु, बभूयात् आदि रूप बन सकते हैं, और लुङ् के आधार (भू-आदि) पर भी लगती है, जिससे अभूत्, भूतु, भूयात् रूप बनते हैं। इसीलिये ग्रीक लैटिन के आधार पर उनका नामकरण भी कर दिया। पाणिनि ने बभूतु बभूयात् आदि रूपों को देखा अवश्य होगा, पर बभूव आदि प्रचलित रूपों का उल्लेख कर चुप हो गये।

बभूतु लिट् + लोट् है, बभू-यात् लिट् + लिङ्। ग्रीक व्याकरण में ऐसे रूपों को Perfect imperative, Perfect optative कहते हैं। अ-बभू-त् जैसे लिट् + लङ् रूपों को Pluperfect कहते हैं।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

यदि अष्टाध्यायी के तृतीय अध्याय चतुर्थ पाद को निम्नलिखित तीन सूत्रों से आगे बढ़ा दिया जाये तो इन वैदिक रूपों की शास्त्रीय व्याख्या हो जायेगी-

३-४-२१८ छन्दसि लिटो लेट्-लोट्-लिङ्-लङः।
२१९ लुङोऽपि त्रय आदितः।
२२० आशीर्लिङ् च।

आज के भारत में संस्कृत व्याकरण की जानकारी सिद्धान्त कौमुदी तक सीमित है। उसमें भी, वैदिक और स्वर प्रक्रिया को एक कोने में धकेल दिया है। वैदिक प्रक्रिया को तो किसी तरह पढ़ लेते हैं, पर स्वर प्रक्रिया पर किसी की दृष्टि नहीं जाती।

स्वर के अपराध से इन्द्रशत्रु वृत्र मारा गया- यह तो सब जानते हैं। पर, कैसे?

इन्द्रशत्रु का विग्रह दो तरह से संभव है- इन्द्रस्य शत्रुः (षष्ठी तत्पुरुष) = इ॒न्द्र॒श॒त्रुः (उदात्त श पर है)। इन्द्रः शत्रुर्यस्य (बहुव्रीहि) = इन्द्र॒शत्रुः (उदात्त प्रथम अक्षर इ पर है) । तत्पुरुष विग्रह के अनुसार वृत्र की बलवत्तरता झलकती है। बहुव्रीहि विग्रह के अनुसार इन्द्र की बलवत्तरता झलकती है।

वाक्य के आदि में संबोधन आद्युदात्त होकर समास को बहुव्रीहि बना देता है। वृत्र के पुरोहित ने कहा - इन्द्र॒शत्रो वर्धस्व। वृत्र का सत्यानाश हो गया। यदि क्रिया को पहले रखता तो बात दूसरी ही होती।

वैदिक व्याकरण जानकर यदि स्वर प्रक्रिया न जाने तो ज्ञान अधूरा रह जायेगा। इसलिये व्याकरण के अन्त में स्वर प्रक्रिया को विस्तार से बताया है, वह भी यथा संभव पाणिनि के सूत्रों के सहारे। यह जानते हुए भी कि वैदिक भाषा के संबंध में पाणिनि के सूत्र पर्याप्त नहीं, उनका उद्धरण कहीं-कहीं अत्यन्त आवश्यक जान पड़ा है।

पाश्चात्त्य वैदिक विद्वान लेट् रूप भवाति और जुहवति को नियमित मानकर जुहवाति को अनियमित मानते हैं। पर पाणिनि को दोनों रूपों का पता था। इसलिये वे कहते हैं- लेटोऽडाटौ। भ्वादि और दिवादि तथा अन्य अ आधार पर तो आट् ही लगता है, पर अन्यत्र अट् और आट् दोनों।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

इस व्याकरण में शब्दरूप और धातुरूप के खानों को भरसक खाली नहीं रहने दिया है, यद्यपि वे रूप वेद में नहीं दीखते। यथा-भू लिट् + लिङ्

३ बभूयात्	बभूयाताम्	बभूयुः
२ बभूयाः	बभूयातम्	बभूयात
१ बभूयाम्	बभूयाव	बभूयाम

लिट् + लोट्

३ बभूतु	बभूताम्	बभूवतु
२ बभूहि	बभूतम्	बभूत

लुङ् + लोट्

३ भूतु	भूताम्	भुवन्तु
२ भो-धि>बोधि	भूतम्	भूत

बभूयात्, बभूतु, भूतु और बोधि के सिवा कोई रूप नहीं मिलते। पर सारे रूपों से परिचय कराना आवश्यक है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

विषयसूची

दो-शब्द	*(iii)*
भूमिका	*(v)*
वर्णमाला	१
अन्त:पद संधि	१०
शब्दरूप	१८
अव्यय, उपसर्ग और निपात	४६
धातुरूप	४८
सार्वधातुक	५३
लिट् लकार	७१
लुङ् लकार	८२
लृट - लकार	१००
क्रियात्मक विशेषण	१११
पद-संधि	११८
कारक	१२४
समास	१३०
लकारार्थ	१३३
उदात्तादिस्वर	१४२
वैदिक धातुरूप-कोष	१५२

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

वर्णमाला

(१) मनुष्य ने बोलना कैसे शुरू किया- इस पर एक-दो शब्द कह देना अप्रासंगिक नहीं होगा। जानवर तिर्यक् चलते हैं। उनकी वाक्तंत्री जिह्वा से सटी रहती है। इसलिये उनकी आवाज की शृंखला टूटती नहीं। लेकिन मनुष्य खड़ा होकर चलता है। अतः उसकी वाक्तंत्री जिह्वा से हट जाती है और आवाज की शृंखला टूट जाती है। खड़ा होकर चलने से ही वनमानुस पहली बार आदमी की तरह बोला होगा।

(२) सबसे पहले अ इ उ स्वरों का उच्चारण हुआ। वह भी तीन मात्रा वाले स्वरों का। दूर से पुकारने पर स्वर में तीन मात्रा होती है। घट कर स्वरों की मात्रा दो और फिर एक हुई। ह्रस्व तथा दीर्घ स्वरों का भेद शुरू हुआ। इसके बाद ए ओ स्वर आये, और अन्त में सन्ध्यक्षर अइ आइ अउ आउ बने। अ इ उ ए ओ अइ आइ अउ आउ बहुत पुराने, भाषा के आदि काल के, स्वर हैं। इनमें से प्रथम पाँच तो ह्रस्व दीर्घ के जोड़े वाले भी थे। स्वर के बाद कंठ पर ह का उच्चारण भी हुआ। तब सिसकारी वाली ध्वनि श ष स का। फिर अनुनासिक ञ म ङ ण न का जन्म हुआ। स्पर्शों में सबसे पहले अघोष च ट त क प आये। दो स्वरों के बीच ये घोष ज ड द ग ब हो गये। फिर घोष ह के संयोग से ये महाप्राण झ ढ ध घ भ हुए। अघोष ह के संयोग से अघोष अल्पप्राण च ट त क प ही महाप्राण छ ठ थ ख फ हुए।

(३) प्रागैतिहासिक संस्कृत की वर्णमाला निम्नलिखित थी - स्वरः अ इ उ ए ओ अइ अउ आइ आउ। प्रथम पाँच साधारण स्वरों के दीर्घ रूप भी थे। व्यंजनः ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द छ फ ख ठ थ च ट त क प श ष स ह। सभी व्यंजन स्वर के सहारे बोले जाते थे।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

(क) ये सभी वर्ण यथासंभव गुण और उच्चारण स्थान के विचार से सजाये गये। कालक्रमेण ए ओ तो लुप्त होने लगे, पर र ल ही स्वर का रूप भी धारण करने लगे। सन्ध्यक्षर सिमटने या सिकुड़ने लगे। उस वर्णमाला के बदले हुए रूप, जो वैदिक भाषा के आधार हैं, माहेश्वरसूत्र कहलाते हैं, और इस प्रकार हैं-

(१) अ इ उ (२) ऋ लृ (३) ए ओ (४) ऐ औ (५) ह य व र (६) ल (७) ञ म ङ ण न (८) झ भ (९) घ ढ ध (१०) ज ब ग ड द (११) ख फ छ ठ थ च ट त (१२) क प (१३) श ष स (१४) ह

(ख) पाणिनि ने सभी सूत्रों के आगे एक-एक व्यंजन लगाया, जो बीच के अक्षरों को समेटने के लिये था। प्रथम पाँच स्वर दीर्घ भी होते हैं, और ये सभी स्वर सानुनासिक भी होते हैं।

(४) इस वर्णमाला का और सुलझा हुआ स्वरूप निम्नलिखित है, जो आजतक प्रचलित है।

(क) साधारण स्वर १ ह्रस्व २ दीर्घ १ २ १ २ १ २ १ २
अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ ॡ

(ख) सन्ध्यक्षर ए ओ ऐ औ

इन संध्यक्षरों को बोलते हैं जैसा लिखा गया है, पर देखते हैं क्रमशः अइ अउ आइ आउ।

व्यंजन	अघोष		घोष		
	अल्पप्राण	महाप्राण	अल्पप्राण	महाप्राण	अनुनासिक
स्पर्श					
कंठ्य कवर्ग	क	ख	ग	घ	ङ
तालव्य चवर्ग	च	छ	ज	झ	ञ
मूर्धन्य टवर्ग	ट	ठ	ड	ढ	ण
दन्त्य तवर्ग	त	थ	द	ध	न
ओष्ठ्य पवर्ग	प	फ	ब	भ	म

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

(घ) अन्त:स्थ तालव्य य मूर्धन्य र दन्त्य ल दन्तोष्ठ्य व

(ङ) ऊष्म तालव्य श मूर्धन्य ष दन्त्य स

कंठ्य घोष ह अघोष : (विसर्ग)

नासिक्य — ÷ (अनुस्वार)

ऐतिहासिक विवरण

(५) स्वर

(क) भाषा के इतिहास के आदिकाल में अ विवृत स्वर था, आ की ही तरह मुह खोलकर एक मात्रा से बोला जाता था। इसलिये दो विवृत ह्रस्व अ मिलकर दीर्घ आ बन जाते थे। लेकिन कालक्रमेण यह अध खुले या बन्द (संवृत) मुह से बोला जाने लगा — यह संवृत हो गया। इसकी जाति ही बदल गयी। जो विवृत अ ऋग्वेद के पुराने मंत्रों में ए ओ के बाद ज्यों का त्यों रह जाता था वही बादवाले मंत्रों में संवृत होने के कारण लुप्त होने लगा।

(ख) कुछ समय बाद अ और अ मिलकर अ ही रहने लगा, क्योंकि यह विवृत नहीं था। बहुत दिनों बाद कात्यायन ने इसका उल्लेख भी किया (शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्)। पाणिनि अपने अन्तिम सूत्र (अ अ) से बता देते हैं कि अ व्याकरण में विवृत ही है, यद्यपि बोलचाल में यह संवृत है। संवृत अ + अ = अ, क्योंकि इसे बताने का कोई दूसरा तरीका नहीं है। इसका प्लुत रूप भी अ ही है, लेकिन तीन मात्रा दिखाने के लिये इसके आगे ३ लिख देते हैं- आगच्छ कृष्ण ३, अत्र गौश्चरति। प्लुत की संधि अगले स्वर से नहीं होती है। संवृत दीर्घ अ को दिखाने की जरूरत नहीं।

(ग) विवृत ह्रस्व अ मौलिक स्वर तो है ही, यह आ के ह्रस्व होने से भी बनता है। यदि दो आ आमने सामने आ जाते हैं तो मंत्र पाठ में पहले को ह्रस्व होना पड़ता है- मा+अपे: (मत जाओ) = मापे: को तोड़कर म आपे: पढना पड़ता है। संहिताकारों ने संधि कर दी थी। मंत्र पाठ में उसे अलग करना पड़ा।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

(६) दीर्घ आ स्वर मौलिक भी है और दो विवृत अ के मिलने से भी बना है। प्राय: अन् भी आ हो जाता है- जन् जायते, खन् खात। मंत्रों में कभी छन्द के विचार से अ भी आ हो जाता है - सचस्वा नः स्वस्तये। पदपाठ में इसलिये सचस्व कर देते हैं।

(७) इ मौलिक स्वर तो है ही, कभी ए ऐ के नीचे उतरने (ह्रस्वादेश) से भी बनता है - सेव् सिषेवे, रै अरि। यह य के संप्रसारण से भी होता है - यज् इयज्। कभी आ भी इ हो जाता है - धा धित।

(८) ई मौलिक स्वर भी है और दो इ के योग से भी बना है -यज् इ - इज् = ईज्। कभी-कभी या के सिकुड़ने से भी ई बनता है - कुर्यात्: कुर्वीत। कभी आ भी ई हो जाता है - पा पीत।

(क) इ भी कभी छन्द के विचार से दीर्घ हो गया है- दृतिं न शुष्कं सरसी शयानम्। सरसी वस्तुतः यहाँ सरसि है। लेकिन न पदपाठ वाले ऐसा कहते हैं, न आधुनिक विद्वान।

(९) उ मौलिक स्वर है, पर कभी-कभी ओ औ को नीचे उतारा जाता है- गो द्विगु, ढौक् डुढौके।

(१०) ऊ मौलिक स्वर है, दो उ का योग भी है, तथा वा औ के सिकुड़ने से भी बना है - वेद में नु के साथ नू भी है, खासकर पाद के आदि में।

(११) ऋ मौलिक स्वर नहीं है। आगे पीछे के उदात्त के कारण निकटवर्ती र ल ही ऋ बन गया है- प्रछति > पृछति, रछति > ऋछति। अवेस्ता रतु वेद ऋतु।

(१२) ॠ तो आ ई ऊ के देखादेखीं से बने हैं। देवानाम्, मनुनीनाम् साधूनाम्: पितृणाम्।

(१३) ऌ तो ऋ का दन्त्य रूप है। ॡ एक काल्पनिक जोड़ा है।

(१४) सन्ध्यक्षर ए ऐ ओ औ के मौलिक रूप हैं क्रमशः अइ आइ अउ आउ। इसलिये किसी स्वर के पहले ये क्रमशः अय् आय् अव् आव् हो जाते हैं।

(क) लेकिन कुछ ए ओ ऐसे नहीं हैं - अस् + धि = एधि, षष् + दश = षोडश।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

(ख) कुछ ऐ औ तो आ+इ ई और आ + उ ऊ द्वारा बने हैं - आ + ईक्षत = ऐक्षत, आ + उज्झत् = औज्झत्। भूतकाल का आगम मूलरूप से आ ही था। व्यंजन के पहले अ हो गया - अभवत्।

(१५) स्वरों का चढ़ाव-उतराव

ऐसा लगता है कि ए (अइ) ओ (अउ) बीच की स्थिति है। इन्हें गुण स्वर कहते हैं। इनमें से अ हटा लेने पर ह्रस्व स्वर इ उ तथा अ जोड़ने से वृद्धि स्वर (अ-अइ = आइ) ऐ और (अ - अउ = आउ) औ बनते हैं।

साधारण स्वर	इ	उ	ऋ	ऌ
गुण स्वर	अइ(ए)	अउ(ओ)	अर्	अल्
वृद्धि स्वर	आइ (ए)	आउ(औ)	आर्	(आल्)

(क) ऋ की सीढी पर अर् गुण है, आर् वृद्धि।

(ख) ऌ की सीढ़ी पर अल् गुण हैं। (आल् वृद्धि)।

(ग) अब स्वरों की सीढी इस प्रकार है -

ह्रस्व	अ	इ	उ	ऋ	(ऌ)
दीर्घ	आ	ई	ऊ	ॠ	(ॡ)
गुण	-	ए	ओ	अर्	अल्
वृद्धि	-	ऐ	औ	आर्	(आल्)

(घ) पाणिनि अ को गुण तथा आ को वृद्धि कहते हैं। ऐसा न कहने पर राज+ऋषि = राजर्षि प्र+ऋच्छति = प्रार्छति नहीं हो सकता था।

(१६) य व र ल का इ उ ऋ ऌ में बदलना सम्प्रसारण कहलाता है। इ उ ऋ ऌ का य व र ल में बदलना क्षैप्र सन्धि कहलाता है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

(१७) य का उच्चारण लगभग इअ होता था। इसलिये य के पहले ऋ प्रायः रि हो जाया करता है - कृ + य = क्रिय। य के पहले इ का दीर्घ होना इसी कारण है - जि+यन्ते = जीयन्ते। उ का दीर्घ होना देखा-देखी से है - स्तु स्तूयते।

(१८) यदि अन्तःस्थ के बाद कोई व्यंजन आता है तो अन्तःस्थ के पहले वाला इ उ दीर्घ हो जाता है - दिव् + य-ति = दीव्यति। पुर्+न = पूर्ण, गिर् + सु = गीर्षु।

(१९) कई धातुओं के ए ऐ ओ औ अन्यत्र आ जैसा व्यवहार रखते हैं - गै गान, ध्यै ध्यान। अव-सो अवसान। औ आव् भी सिकुड़ कर ऊ हो जाता है- धाव् धूत।

(२०) अगले उदात्त के प्रभाव से पूर्ववर्ती अ आ लुप्त हो जाता है-

दुधार्मि दुध्मसि

अस्ति स्तः

कभी आ ह्रस्व अ होकर रह जाता है-

पाद् पदा

(२१) कभी आ ह्रस्व इ या दीर्घ ई में बदल जाता है- स्था स्थित, पा पीत, पुनाति-पुनीतः।

व्यंजन

(२२) व्यंजनों का विभाजन स्पर्श, अन्तःस्थ और ऊष्म के रूप में है। फिर ये या तो घोष हैं या अघोष। स्पर्शों का विभाजन तो पुनः अल्पप्राण और महाप्राण के रूप में भी है। उच्चारण स्थान के विचार से तो इनका विभाजन है ही।

(क) घोष अल्प प्राण (ग ज ड द ब) मौलिक तो हैं ही पर इनके महाप्राण (घ झ ढ ध भ) भी दुहराने पर अल्प्राण हो जाते है - धा दधा, भा बभा।

(ख) अघोष महाप्राण भी मौलिक हैं, पर दुहराने पर अल्प्राण हो जाते हैं- फल् पफल्, स्था तस्था।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

(ग) घोष अल्पप्राण से शुरू होने वाले शब्द यदि अन्तिम वर्ण पर अपनी महाप्राणता खो देते है तो वह महाप्राणता पहले अक्षर पर आ जाती है - दुह्+स् = धुक्, दभ् + स् = धप्, बुध् + स् = भुत्।

(२३) यद्यपि कवर्ग और चवर्ग - दोनों मौलिक हैं, दुहराने पर कवर्ग चवर्ग में बदल जाता है- कर् चकर्, गम् जगम्। लेकिन शब्द बनने की प्रक्रिया में चवर्ग भी कवर्ग बन जाता है- पच् पाक, भुज् भोग।

(२४) एक शब्द के भीतर दो महाप्राण वर्ण नहीं रह सकते। इसीलिये तो दुहराने पर महाप्राण अल्पप्राण बन जाते हैं। शब्दों की बनावट में भी ऐसा होता है- भो+धि = बोधि, विध् + अथ = विदध, इत्यादि। इसे ग्रासमन का नियम कहते हैं।

(२५) टवर्ग के स्पर्श मौलिक हैं, पर ऋग्वेद में ही इनका उच्चारण मूर्धा से खिसककर दाँत के नीचे आने लगा था। कहते हैं, ऋग्वेद का तवर्ग दन्तमूलीय है। संस्कृत तक आते आते सारे टवर्ग तवर्ग हो गये। फिर भी इनका वंश समाप्त नहीं हुआ और वे जीवित रहे। प्राकृत में तो ये फिर संख्या में बढ़ने लगे। ऋग्वेद में दो स्वरों के बीच ड ळ हो जाता है और ढ ळ ह। यजुर्वेद में उन्हें सीधे ल और ल्ह लिख देते हैं।

(२६) टवर्ग इतने बलवान हैं कि तवर्ग को अपनी ओर खींच लेते हैं। ईड् + ते = ईट्टे।

मौलिक होते हुए भी तवर्ग कभी टवर्ग से खींच जाता है, कभी चवर्ग से - तत् + च = तच्च, तत् + जलम् = तज्जलम्।

(२७) दुहराने पर कवर्ग तो चवर्ग में बदल जाता था, पर जिस समय गंगा (गम् - गम् - आ = सदा बहने वाली) नदी का नामकरण हुआ उस समय यह प्रवृत्ति जा चुकी थी। यह घटना ऋग्वेद के युग से पहले की है।

(२८) चवर्ग के वर्ण स्पर्श तो हैं ही, और इसी कारण इनकी अदला-बदली कवर्ग से होती है, पर चवर्ग स्पृष्ट-संघर्षी भी है - च = त्श, छ = त्श्ह, ज = द्ज़, झ = द्ज़्ह। इनकी अदला-बदली कवर्ग से नहीं होती। ये टवर्ग में बदल जाया करते हैं- प्राछ् - प्राट्, राज् - राट्। झ का

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

प्रतिनिधि संस्कृत में ह हो गया: अझम् = अद्ज़्हम् वेद में अहम् अवेस्ता में अज़म् पुरानी फारसी में अदम्। चवर्ग का एक ही वर्ण कहीं स्पर्श था, कहीं स्पृष्टसंघर्षी। इसलिये उनका विकास अलग-अलग ढंग से हुआ। स्पृष्टसंघर्षी-च छ ज झ का त् और द् तत्त्व ट् और ड् भी था। तदनुसार, श् भी ष् था। इसीलिये तो प्राछ् = प्राट्ष्ह् प्राट् हो जाता है; राज् = राड्ज् राट् हो जाता है। प्रत्यय वाले न के पहले प्रछ्=प्रत्श्ह, केवल प्रश् रह जाता है (प्रश्न)। विश् का श् भी किसी च के गर्भ से निकला है। इसलिये विश् से विट्, लेकिन दिश् से दिक्। त्र प्रत्यय के पहले राज् = राड्ज़् राष् रह जाता है। (राष्ट्र)।

(क) स्पृष्ट संघर्षी होने के कारण ही ऋग्वेद के मंत्रों में छ को संयुक्त वर्ण मानते हैं और उसके पहले ह्रस्व स्वर भी गुरु माना जाता है। इसलिये ऋग्वेद में गछति को गच्छति लिखने की जरूरत नहीं। काठक संहिता में स्पृष्टसंघर्षी छ की संयुक्तवर्णता को श्छ द्वारा व्यक्त करते हैं। इसलिये गछति = गच्छति = गश्छति।

(३०) य र ल व अन्त:स्थ कहलाते हैं। ये सभी घोष हैं। इनका सम्प्रसारण इ ऋ ऌ उ के रूप में होता है। व्यंजन के रूप में ये स्पर्श और ऊष्म से भिन्न संधर्षी हैं। इनमें थोड़ी महाप्राणता भी है, क्योंकि ह के साथ व् ब् हो जाता है, य भी ज्। जिह्वा से जिव्हा होने पर यह जीभ हो गया। मह्य से मय्ह होने पर यह मुज्झ हो गया। हिन्दी मुझे।

(३१) संस्कृत में ऊष्म श ष स अघोष हैं। इसके घोष रूप भी थे। शब्दों की बनावट में वे आये और कुछ विकार करके चले गये - शास् + धि = शाज़् + धि = शाधि (यहाँ ज् चुपचाप चला गया)। लेकिन अ - स्तो - स् - ध्वम् > अ - स्तो-ज़् + ध्वम् = अस्तोढ्वम्। तालव्य ज़् का उदाहरण दुर्लभ है।

(३२) बहुत से उदाहरणों में ह स्पृष्टसंघर्षी झ (= द्ज़्ह, ड्ज्ह) से बिखर कर आया है। इसलिये सह् + त की संधि में अगला त प्रथम तत्त्व के कारण घोष, द्वितीय तत्त्व के कारण मूर्धन्य और तृतीय तत्त्व के कारण महाप्राण ढ बनकर पूर्ववर्ती तत्त्वों को खा गया है। (साढ)। प्रागैतिहासिक

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

काल में वैदिक ह कहीं घ था, कहीं झ। द से शुरू होने वाले शब्द में यह घ था, अन्यत्र झ- ऐसा लगता है। गाह् का ह् कभी भ् था। (गाहते: गभीर)। उपानह्, का ह ध् था (उपानत्)। ह् का पदान्त रूप बता देता है कि इसका मूल स्रोत क्या था।

(क) माहेश्वर सूत्र में ह दो बार आया है। पहला ह घोष है। यह शब्द के शुरू में रहता है; जैसे हस्, हन्। दूसरा ह अघोष है। वह धातु के अन्त में रहता है - सह्। संस्कृत में जहाँ भी यह आया है अन्य सजातीय भाषाओं में उन्हीं जगहों पर कहीं क् है, कहीं श्। अघोष ह और श सजातीय हैं। एक ही ध्वनिग्राम के तत्त्व हैं। इसीलिये श् पदान्त में कभी क् हो जाता है- दिश् - दिक्।

ये सब बातें अशास्त्रीय हैं। पर इनको भी जानना चाहिये।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अन्तःपद संधि

(३३) शब्दों की आन्तरिक बनावट में, जब प्रकृति के अन्तिम और प्रत्यय के आदिम वर्ण मिलते हैं, तो इस संधि को अन्तःपद संधि कहते हैं। कभी-कभी प्रकृति के ही दो वर्ण आपस में मिलते हैं। वर्णों के मिलने की चार अवस्थायें होती हैं-

स्वर+स्वर

स्वर+व्यंजन

व्यंजन+स्वर

व्यंजन+व्यंजन

(३४) प्रकृति के अन्त में तो कोई भी स्वर हो सकता है, पर प्रत्यय के आदि में ऋ ऌ स्वर कभी नहीं होते। प्रकृति के अन्त में कोई भी व्यंजन हो सकता है, लेकिन प्रत्यय के आदि में केवल निम्नलिखित व्यंजन होते हैं- त थ ध न भ म य र व स ।

स्वर+स्वर

(३५) अनेकाक्षर शब्दों में अ आ + अ आ = आ, इ ई + इ ई = ई, उ ऊ + उ ऊ = ऊ-देव + अस् = देवाः, लता + अस् = लताः, इ-इज् = ईज्, उ - उच् = ऊच्।

(३६) असवर्ण स्वर के पहले, इ ई य् हो जाता है, उ ऊ व् हो जाता है, और ऋ र् हो जाता है- मति + आ = मत्या, धेनु + आ = धेन्वा, नदी + आ = नद्या, वधू + आ = वध्वा, पितृ + आ = पित्रा।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

(क) एकाक्षर शब्दों में ऐसी स्थिति में इ ई इय् हो जाता है, उ ऊ उव् हो जाता है, ॠ इर् हो जाता है, लेकिन पवर्ग के बाद वाला उर् धी + आ = धिया, भू + आ = भुवा, गॄ + अ = गिर- , पॄ + अ = पुर- ।

(४०) अ आ + इ ई = ए, अ आ + उ ऊ = ओ, तथा अ आ + ए ऐ = ऐ, अ आ + ओ औ = औ - देव+इन = देवेन, देव + ऐस् = देवैः, देव + औ = देवौ।

(४१) कभी-कभी अ और ओ के बीच में -य् चला आता है। देव + ओस् = देवयोः, लता + ओस् = लतयोः (आ ह्रस्व अ हो जाता है)।

(४२) लेकिन कभी-कभी तो अ + ए = ए, अ + ओ = ओ - एध + ए = एधे, तितउ > तितओ = तितो। कभी तो अ + अ = अ भव + अन्ति = भवन्ति।

(क) दूसरी ओर, भूतकाल वाला आगम आ + धातु का इ ई = ऐ, आ + उ ऊ = औ, आ + ॠ = आर् - आ + इच्छत् = ऐच्छत्, आ + उनत् = औनत् , आ + ॠच्छत् = आर्च्छत्।

(४३) प्रत्यय वाले किसी स्वर के पहले प्रकृति का ए ऐ ओ औ क्रमशः अय् आय् अव् आव् हो जाता है- ने + अन = नयन, पो+अन = पवन, नै + अक = नायक, पौ + अक = पावक। गौ + अस् = गावः।

(क) लेकिन कभी-कभी प्रत्यय का आदिम अ लुप्त हो जाता है- मुने + अस् = मुनेस् (मुनेः), गो + अस् = गोस् (गोः)। वास्तव में, अस् का दूसरा रूप - स् है, जैसे अम् का दूसरा रूप - म्: फल-म्, देव-म्, मुनि-म्, वाच् + अम् = वाचम्, पाद् + अम् = पादम्। लेट् लकार का असि कभी सि ही रह जाता है - पॄ पर्षि, वह् + सि = वक्षि, यज् + सि = यक्षि।

शब्दों की आन्तरिक बनावट में कुछ विरोधी नियम आया करते हैं, क्योंकि हम यहाँ बने-बनाये शब्दों को तोड़कर फिर जोड़ते हैं। भवन्ति वस्तुतः भव-न्ति है, लेकिन प्रत्ययों की एकरूपता के लिये हम न्ति को अन्ति मान लेते हैं।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

स्वर + व्यंजन

(४४) प्राय: य व म के पहले अ दीर्घ आ हो जाता है - देव + य = देवाय, भव+मि = भवामि, भव+वस् = भवाव:।

(४५) य के पहले इ उ दीर्घ हो जाता है, पर ऋ रि में बदल जाता है— जि जीयते, स्तु स्तूयते, कृ क्रियते। लेकिन स्मृ स्मर्यते।

(४६) इर् उर् में बदले हुए ॠ का इ उ किसी व्यंजन के पहले दीर्घ हो जाता है- कॄ किर्+य-ते = कीर्यते, कॄ + किर् न = कीर्ण, पॄ पुर् पूर्यते, पूर्ण। लेकिन कुर् + यात् = कुर्यात्-यही एक अपवाद है।

व्यंजन + स्वर

(४७) प्रत्यय वाले स्वर के पहले प्रकृति का अन्तिम व्यंजन नहीं बदलता — जगत्+आ = जगता, ककुभ् + इ = ककुभि। य के पहले भी व्यंजन नहीं बदलते — गम् + यात् = गम्यात्।

(४८) किसी अन्त:स्थ और अनुनासिक के पहले भी प्रकृति के अन्तिम व्यंजन नहीं बदलते, पर य को छोड़कर अन्यत्र कुछ अपवाद तो हैं ही। जैसे - अद् + न = अन्न, मृद् + मय = मृन्मय, जगम् + वस् = जगन्वस्, अ - गम् + म = अगन्म।

एक सामान्य नियम है कि तवर्ग के वर्ण टवर्ग के कारण टवर्ग हो जाते हैं, चवर्ग के कारण चवर्ग हो जाते हैं — ईड् + ते = ईट्ट, द्विड् - धि = द्विड्ढि, याच् + ना = याच्ञा, यज् + न = यज्ञ।

पदान्त में दो व्यंजन नहीं रह सकते। इसलिये गच्छन्त् + स् = गच्छन्। यदि दो व्यंजन आधार के अंश है तब तो रह जाते हैं - उर्ज् + स् = उर्क्, सुहार्द् + स् = सुहार्त्।

(क) कभी श् + स् की स्थिति में यह - ङ् क् स् - हो जाता है और केवल ङ् बचता है - कीदृश् + स् = कीदृङ्।

(ख) कभी ङ् + सु की स्थिति में एक क् घुस आता है और - सु को - षु बना देता है - लुङ् लङ् लृङ्-क्-षु अड्डुदात्त: = लुङ्लङ्लृक्ष्वड्डुदात्त:।

(ग) चूंकि हर नियम का कोई न कोई अपवाद है, खासकर वेद की

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

भाषा में, इसलिये पाणिनि ने कहा है अयस्मयादीनि च्छन्दसि। जैसे - ऋच् + वत् = ऋक्वत् (पदत्वात्कुत्वं भत्वाञ्झश्त्वाभावः) नियमतः, या तो ऋच्वत् होता या ऋग्वत्।

(४९) त थ के पहले

(क) च् ज् हो जाता है क् - उच् + त = उक्त, भुज् + त = भुक्त।
(ख) द् अघोष त् हो जाता है - अद् + ति = अत्ति, अद् + थस् = अत्थः।
(ग) ड् भी अघोष हो जाता है, पर त थ ही मूर्धन्य हो जाता है - ईड् + ते = ईट्-टे।
(घ) छ् श् क्ष् और स्पृष्टसंघर्षी ज् हो जाता है ष्, जो त थ को ही मूर्धन्य बना देता है - पृछ् + त = पृष्ट, विश् + त = विष्ट, चक्ष् + ते = चष्टे, अ-चक्ष् + थास् = अचष्ठाः, राज् + त्र = राष्ट्र।

(५०) त थ स्वयं

(क) घोष महाप्राण के आगे ध हो जाते हैं जिस कारण पूर्ववर्ती महाप्राण अल्पप्राण हो जाता है - बुध् + त = बुद्-ध, लभ् + त = लब्ध। केवल धा का अबल रूप दध् ऐसा नहीं करता - दध् + ते = धत्ते (आगे देखें)।

(१) अन्तिम ह् कहीं घ का प्रतिनिधि है, कहीं स्पृष्टसंघर्षी झ् का। इसलिये दह् + त > दघ्-त=दग्ध। स्पृष्टसंघर्षी झ् = ड्ज़्ह् वेद में ह् होकर आया है, इसलिये इसके बाद वाला त थ मौलिक तत्त्वों के कारण घोष-महाप्राण मूर्धन्य ढ हो जाता है और पूर्ववर्ती ह् को ढ् बनाकर उसे निगल जाता है। पूर्ववर्ती स्वर यदि ह्रस्व है तो दीर्घ हो जाता है। इसीलिये, लिह् + त लिढ् + ढ = लीढ। लेह् + ति > लेढ् - ढि = लेढि।

(ख) ष् के बाद मूर्धन्य हो जाते हैं - द्वेष् + ति = द्वेष्टि, द्विष् + थ = द्विष्ठ।

(५१) स के पहले

(क) घोष स्पर्श अघोष और अल्पप्राण हो जाते हैं — अद् + सि = अत्सि, लभ् + स्य = लप्स्य, रूणध् + सि = रूणत्सि।
(ख) यदि पहले अक्षर पर घोष अल्पप्राण है तो अगले घोष महाप्राण के

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अघोष अल्पप्राण होने पर पहले अक्षर का अल्प प्राण महाप्राण हो जाता है - धा दध् + से = धत्से, दध् + ते = धत्ते, अ-दध् + त = अधत्त, बुध् + सु = भुत्सु, बोध् + स्य = भोत्स्य।

(ग) च् ज् ह् श् ष् क्ष् भी क् हो जाता है और स को मूर्धन्य बना देता है - वच् + सि = वक्षि (वक्षि), युनज् + सि = युनक्षि (युनक्षि), लेह् + स्य = लेक्ष्य (लेक्ष्य), वेश् + स्य = वेक्ष्य (वेक्ष्य-), द्वेष् + सि = द्वेक्षि (द्वेक्षि), चक्ष् + से = चक्षे (चक्षे)

(घ) न् म् अनुस्वार हो जाता है - हन् + सि + हंसि, रम् + स्य = रंस्य।

(ङ) कभी-कभी पूर्ववर्ती स् त् हो जाता है — वस् + स्यति = वत्स्यति, जिघस् + सु = जिघत्सु।

(५२) स् स्वयं

(क) दो स्पर्शों के बीच लुप्त हो जाता है - उद् + स्थान - उत्थान, अच्छिद् - स् - त = अच्छित्त।

(ख) अ आ से भिन्न स्वर के बाद मूर्धन्य हो जाता है- मुनिषु, ऋतु-षु लेकिन लतासु राजसु।

(ग) क् र् के बाद भी मूर्धन्य हो जाता है - दिश् + सु दिक्षु (दिक्षु), गिर् + सु = गीर्षु।

(घ) बीच में अनुस्वार या विसर्ग के रहने पर भी मूर्धन्य हो जाता है - हविस् हवींषि हविःषु। पुम् + सु = पुंषु होना चाहिये, पर अथर्ववेद प्रतिशाख्य पुंसु बताता है। पुंसा आदि रूप तो ठीक है, क्योंकि पुंस् आधार से बना है। लेकिन पुंषु में सु तो विभक्ति है।

(ङ) शब्दों के अन्त में विसर्ग हो जाता है - देव + स् = देवः।

(५३) प्रत्यय का न्

(क) र् ष् के बाद मूर्धन्य हो जाता है - कृष् + न = कृष्ण, पुर् + न = पूर्ण। बीच में स्वर, अन्तःस्य, कवर्ग, पवर्ग हो तो भी - हरिणा, विषेण, रामायण इत्यादि।

(ख) कभी कभी तो पूर्ववर्ती शब्द का र् अगले न् को मूर्धन्य बना देता है - पूर्वाह्ण, पर वृत्र-हन् से वृत्रघ्ना आदि में ऐसा नहीं हुआ।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

(ग) च् ज् के बाद तालव्य हो जाता है - याच् + ना = याच्ञा, यज् + न = यज्ञ (यज्ञ)। लेकिन प्रश् (= प्रछ्) + न = प्रश्न। न के लगने पर स्पृष्ट-संघर्षी छ् (= त् श् ह्) बिखर जाता है।

(५४) प्रत्यय यदि एक ही व्यंजन वाला (अपृक्त) हो तो प्रकृति के अन्तिम व्यंजन के बाद वह लुप्त हो जाता है। लेकिन पूर्ववर्ती व्यंजन भी ज्यों का त्यों नहीं रहता। तब

(क) च्, स्पर्श ज्, श् और ह् हो जाता है क् — वाच् + स् = वाक्, रुज् + स् = रुक्, दिश् + स् = दिक्, मुह् + स् = मुक्, दुह् + स् = धुक्।

(ख) छ्, स्पृष्टसंघर्षी ज् और ष् हो जाता है ट् — प्राछ् + स् = प्राट्, राज् + स् = राट्, द्विष् + स् = द्विट्।

(ग) स्पृष्टसंघर्षी झ् से बिखरा हुआ ह् भी ट् हो जाता है- लिह् + स् = लिट्। किसी स्पृष्टसंघर्षी च् (त्श्) से बिखरा हुआ श् भी ट् हो जाता है - विश् + स् = विट्।

(घ) तवर्ग के सभी वर्ण और ध् का प्रतिनिधि ह् भी त् हो जाता है - जित् + स् = जित्, मथ् + स् = मत्, सुहृद् + स् = सुहृत्, युध् + स् = युत्, उपानह् + स् = उपानत्।

(ङ) पवर्ग के वर्ण प् में बदलते हैं — ककुभ् + स् = ककुप्।

(च) र् स् विसर्ग हो जाते है - द्वार् + स् = द्वाः, मनस् + स् = मनः।

(छ) ञ्च् ङ्क् होकर केवल ङ् रह जाता है - प्राञ्च् + स् = प्राङ्क् > प्राङ्।

(ज) अनुस्वार न् हो जाता है - विद्वांस् + स् = विद्वान्। दम् + स् (= अस्) = दन् (पतिर्दन् = दम्पति)।

(५५) अन्तिम घोष महाप्राण के अघोष अल्प्राण बन जाने पर पहले अक्षर का घोष अल्पप्राण महाप्राण बन जाता है - दह् + स् = धक्, बुध् + स् = भुत्।

(५६) प्रत्यय के रूप में भ् शब्दरूप का तत्त्व है, ध् धातुरूप का। ध् भ् के पहले सभी व्यंजन क् ट् त् प् की स्थिति पर आ जाते हैं और फिर

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

घोष ग् ड् द् ब् हो जाते हैं - दिश् दिक् + भिस् = दिग्भिः, बुध् भुत् + भिस् = भुद्भिः, द्विष् द्विट् + धि = द्विड्ढि, अ-दुह् - ध्वम् = अधुग्ध्वम्।

(५७) सप्तमी बहुवचन - सु के पहले भी ऐसा ही होता है - दिश् दिक् + सु = दिक्षु (दिक्षु), बुध् + सु = भुत्सु।

(५८) इस प्रसंग में पाणिनि के द्वारा बताये गये प्रत्ययों के बारे में कुछ कह देना आवश्यक है। प्रायः सभी प्रत्यय अनुबन्ध से युक्त हैं — प्रत्यय के आगे या पीछे या दोनों ओर कोई स्वर या व्यंजन होते है जो इत् (चले जाने वाले) कहलाते हैं। इस पुस्तक में प्रायः पाणिनीय प्रत्ययों का उल्लेख है। उन्हें असली रूप में पहचानना आवश्यक है। इसके लिये कुछ नियमों को जानना जरूरी है।

प्रत्ययों का अन्तिम व्यंजन लुप्त हो जाता है (हलन्त्यम्) – अच् = अ, यत् = य। लेकिन विभक्ति वाले तवर्ग के वर्ण, स् और म् लुप्त नहीं होते (न विभक्तौ तुस्माः) - आत् देवात्, भिस् मुनिभिः, साधुभ्याम्। प्रत्यय का सानुनासिक स्वर भी लुप्त हो जाता है — प्राचीन काल में व्याकरण को बोलकर पढ़ाते थे और तुमुन् को तुमुँन् बोलते थे। छात्र समझ जाते थे कि मु का स्वर लुप्त होने वाला है और तुमुन् वास्तव में तुम् ही है। बाद में लिखित रूप में तुमुन् ही आने लगा, लेकिन उकार फिर भी लुप्त ही रहता था। तब छात्रों ने समझा कि तुमुन् भी तुमुँन् ही है (प्रतिज्ञानुनासिक्याः पाणिनीयाः)। तद्धित प्रत्ययों को छोड़कर अन्यत्र आदिम ल् श् और कवर्ग लुप्त हो जाते हैं - ल्यप् = य, शप् = अ, खच् = अ, घञ् = अ, शतृ = अत्, शानच् = आन, लेकिन तद्धित प्रत्यय लच् = ल, शल् = श, कप् = क। (लशक्वतद्धिते)। प्रत्यय का चवर्ग और टवर्ग भी लुप्त हो जाता है (चुटू) - चानश् = आन, शानच् = आन, ट = अ, ड = अ। प्रत्यय का ष् भी लुप्त हो जाता है- षाकन् = आक (षः प्रत्यय स्य)।

इन नियमों के कारण कुछ प्रत्यय शून्य होते हैं - च्लि में च् ल् इ सभी लुप्त है। क्विप्, क्विन्, ण्वि में भी कुछ नहीं बचता। ये शून्य प्रत्यय है। पर इन प्रत्ययों के लगने से धातु संज्ञा बन जाते हैं - भुज् + क्विप् = भुज् (खाने वाला), भज् + ण्वि = भाज्। जहाँ धातु के बाद कुछ नहीं लगता है,

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

वहाँ भी पाणिनि शून्य प्रत्यय लगाते है - अट् + शप् + ति = अटति, लेकिन् अद् + ० + ति = अत्ति।

ये अनुबन्ध कुछ बदलाव लाकर ही जाते हैं। संक्षेप में, क् ङ् धातु स्वर को अपनी ही अवस्था में रहने देते हैं, अथवा घटा भी देते हैं - कृ + क्त = कृत, भुज् + क्तिन् = भुक्ति, गम् + क्त = गत, हन् + क्त = हत। ख् के कारण पूर्ववर्ती शब्द में अनुस्वार लग जाता है - विह + गम् + खच् = विहंगम। घ् से चवर्ग कवर्ग में बदल जाता है - पच् + घञ् = पाक, रुज् + घञ् = रोग। ण् ञ् के कारण धातुस्वर में वृद्धि होती है - कृ+ण्यत् = कार्य, भू + ण्यत् = भाव्य। मध्यवर्ती स्वर में गुण होता है - विद् + यत् = वेद्य। ड् से अन्तिम व्यंजन सहित स्वर का लोप होता है - जन् + ड = ज। त् से प्रत्यय पर स्वरित स्वर रहता है - कृ + तव्यत् = कर्तव्यं। म् से धातु के बीचोबीच प्रत्यय घुस जाता है - युज् + श्नम् = यु-न-ज् सृज् + अम् = सृ-अ-ज् (स्रज्)।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

शब्द रूप

(५९) वैदिक भाषा में शब्द पाँच तरह के हैं — संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया और अव्यय।

(क) अव्यय वे शब्द हैं जिनका बदलना बन्द हो गया है। वैदिक भाषा का अपना लम्बा इतिहास है। पूर्ववर्ती भाषा के कोई वाक्य ही घिसपिट कर अव्यय हो गये। कोई शब्दरूप ही नहीं, धातुरूप भी घिस-पिट कर अव्यय हो गया है। शब्दों का घिसना पिटना आगे भी चलता रहा। कई अप्रचलित शब्दरूप भी कालक्रमेण अव्यय हो गये; जैसे सहसा, शनैः शनैः, इत्यादि।

(ख) क्रिया का संबंध एक ओर काल और अर्थ से है, दूसरी ओर कर्ता या कर्म के पुरुष और वचन से।

१. काल हैं भूत, वर्तमान और भविष्य। इनके भी भेद-उपभेद हैं। अर्थ हैं आज्ञा, इच्छा, निश्चय, संभावना इत्यादि।

२. पुरुष तीन हैं- प्रथम पुरुष, मध्यम पुरुष और उत्तम पुरुष।

३. वचन तीन हैं - एकवचन, द्विवचन और बहुवचन।

क्रिया के रूप प्रत्येक काल और अर्थ में इन तीन पुरुषों और वचनों के अनुसार अलग-अलग होते हैं। रूपों में भेद विभक्ति के कारण होते हैं, और क्रिया के विभिन्न रूपों को धातुरूप कहते हैं।

(ग) संज्ञा और सर्वनाम वाक्य में क्रिया के संबंध से और आपसी संबंध से भी आठ रूपों में प्रकट होते हैं, जिन्हें कारक कहते हैं।

१. कारक आठ हैं - (१) कर्ता, (२) कर्म, (३) करण, (४) सम्प्रदान, (५) अपादान, (६) संबंध, (७) अधिकरण,

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

(८) संबोधन। कर्ता और कर्म ही मुख्य कारक हैं। अन्य कारक तो इनके गिरते हुए रूप हैं।

२. आठ कारकों के रूप विभक्ति से बनते हैं, जिनके नाम क्रमश: ये हैं - (१) प्रथमा (२) द्वितीया (३) तृतीया (४) चतुर्थी (५) पंचमी (६) षष्ठी (७) सप्तमी। संबोधन के रूप प्रथमा विभक्ति से ही बनते हैं लेकिन उदात्त स्वर प्रथम अक्षर पर चला आता है जिस कारण कभी-कभी रूप में भी परिवर्तन हो जाता है। एकवचन वाले संबोधन रूप को संबुद्धि कहते हैं।

संज्ञा और सर्वनाम के तीन लिंग होते हैं - स्त्रीलिंग, पुंलिंग और नपुंसकलिंग।

(घ) विशेषण संज्ञा और सर्वनाम की विशेषता बताते हैं और रूपों में उन्हीं के अनुसार चलते हैं।

विशेषण की तरह ही संख्या वाचक शब्द होते हैं। प्रथम चार संख्या तो लिंग का भेद भी दिखाते हैं। इसके बाद लिंग का भेद बन्द हो जाता है, पर विभिन्न कारकों के अनुसार वे बदलते ही हैं।

(ङ) संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और संख्या वाचक शब्दों के विभिन्न कारकीय रूपों को शब्दरूप कहते हैं।

शब्द रूप के विचार से संज्ञा और विशेषण एक जैसे हैं, सर्वनाम उनसे थोड़ा भिन्न चलते हैं, और संख्यावाचक शब्द कुछ और भिन्न।

(६०) संज्ञा और विशेषण

ये या तो स्वरान्त हैं या व्यंजनान्त। फिर दोनों या तो एकाक्षर हैं या अनेकाक्षर। इस प्रकार संज्ञा और विशेषण चार तरह के हैं —

१. एकाक्षर स्वरान्त

२. एकाक्षर व्यंजनान्त

३. अनेकाक्षर स्वरान्त

४. अनेकाक्षर व्यंजनान्त

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

(६१) विभक्तियाँ निम्नलिखित हैं —

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	१ स्	८औ, आ	११ अस्
द्वितीया	२ अम्	औ, आ	१२ अस्
तृतीया	३ आ	९ भ्याम्	१३ भिस्
चतुर्थी	४ ए	भ्याम्	१४ भ्यस्
पंचमी	५ अस्	भ्यास्	१५ भ्यस्
षष्ठी	६ अस्	१० ओस्	१६ आम्
सप्तमी	७ इ	ओस्	१७ सु

(क) रूप के विचार से विभक्तियाँ उतनी ही हैं जो संख्याओं से दिखायी गयी हैं। केवल संबुद्धि रूप कभी-कभी कुछ बहक जाता है, जिसकी संख्या १८ है।

(१) किसी शब्द के अधिक से अधिक १८ रूप हो सकते हैं। पर बहुत से शब्दों में तो १-२, ५-६, ११-१२ और १४-१५ रूप एक ही जैसे होते हैं। अतः रूपों की संख्या घट कर १४ तक आ सकती है। इन विभक्तियों में भी कुछ में कभी-कभी परिवर्तन आते हैं, जैसे ६ अस् = स्।

(२) नपुंसक इकारान्त और उकारान्त शब्दों में १-२ रूप पर विभक्ति नहीं हैं। पर अकारान्त के आगे -म् है। ऋकारान्त न० शब्द संहिताओं में नहीं है। अकारान्त न० शब्दों के लिये ८ पर विभक्ति - ई है, इकारान्त और उकारान्त शब्दों के लिये - नी। अकारान्त, इकारान्त और उकारान्त शब्दों के लिये ११-१२ पर विभक्ति -नि है, जिसके पहले स्वर दीर्घ हो जाता है। वेद में यह - नि हट भी जाता है। व्यंजनान्त शब्दों के लिये तो न० विभक्ति ८ पर ई है, ११-१२ पर इ, लेकिन तब अन्तिम व्यंजन के पहले एक अनुनासिक या

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अनुस्वार चला आता है। अन्य न० रूप पुं०, की तरह होते हैं। इ उ के आद ४-७ तथा १० पर एक - न् - घुस आता है।

(३) पुं० और स्त्री० व्यंजनान्त शब्दों के १-२, ८ और ११ रूप सबल होते हैं। शेष रूप अबल। लेकिन जहाँ अबल और मध्यम भेद उपस्थित होते हैं वहाँ ९, १३-१४ और १७ रूप मध्यम हैं, शेष अबल।

(४) न० व्यंजनान्त शब्दों का ११-१२ रूप सबल है, ८ अबल और १ मध्यम।

(ख) उदात्त संबोधन के प्रथम अक्षर पर होता है, अन्यत्र चाहे जहाँ कहीं रहा हो। फिर सबल रूपों में यह अंग (आधार) पर होता है, अन्यत्र विभक्ति पर।

(६२) एकाक्षर स्वरान्त शब्द

ये शब्द वे ही हैं जो पहले कभी लगभग वैसे ही रूप वाले धातु थे। उनके अन्त में आ, ई, ऊ, ऐ, ओ औ स्वर होते हैं। उनमें से कुछ पुं० हैं, कुछ स्त्री०। पुं० जा (बच्चा), त्रा (बचाने वाला), दा (देने वाला)। स्त्री० क्षा (घर) खा (कूआँ) ग्ना (नारी)।

(क) आकारान्त शब्द का आ १-२, ८, ११ को छोड़कर अन्यत्र स्वरादि विभक्तियों के पहले लुप्त हो जाता है। लेकिन तुमर्थक रूपों में आ रह जाता है - परा-दा + ए = परादै (= परा-दातुम्), प्र-ख्या+ए = प्रख्यै (= प्रख्यातुम्)।

(ख) ईकारान्त और ऊकारान्त एकाक्षर शब्द दो तरह के हैं – एक का ई ऊ स्वर के पहले य् व् हो जाता है: प्रधी, प्रध्यम्, वर्षाभू वर्षाभ्वम्। दूसरे का ई ऊ स्वर के पहले इय् उव् हो जाता है : सुधी सुधियम्, स्वयंभू स्वयंभुवम्। वेद में दूसरे तरह के ही ई ऊ हैं। यदि स्वर के पहले इन्हें य् व् ही लिखा है तो भी वे इय् उव् ही पढ़े जाते हैं: सेनानी सेनान्यम् = सेनानियम्, आधी आध्यम् = आधिअम्।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

संयुक्त वर्ण के बाद वाले ई ऊ तो सर्वत्र इय् उव् ही होते हैं: यज्ञ-प्री यज्ञप्रियम्, सत्यब्रू सत्यब्रुवम्।

१ रूप पर पुं० में विसर्ग रहता है, स्त्री० में नहीं भी रहता है।

	जा (स्त्री० पुं०)	धी (स्त्री०)	भू (स्त्री०)
१-१८	जा: जा	धी:	भू:
२	जाम्	धियम्	भुवम्
३	जा	धिया	भुवा
४	जे	धिये	भुवे
४-६	ज:	धिय:	भुव:
७	(जि)	(धियि)	भुवि
८	जौ जा	धियौ, धिया	भुवा
९	जाभ्याम्	धीभ्याम्	भूभ्याम्
१०	(जो:)	धियो:	भुवो:
११-१२	जा:	धिय:	भुव:
१३	जाभि:	धीभि:	(भूभि:)
१४-१५	जाभ्य:	(धीभ्य:)	(भूभ्य:)
१६	(जाम्)	धियाम् धीनाम्	भुवाम्
१७	जासु	धीषु	(भूषु)

किसी कारण से, ऋग्वेद में, धियाम् से अधिक धीनाम् का प्रयोग है। कोष्ठगत रूप प्रयोग में नहीं दीखते।

(ग) रै, गो, नौ के रूप एक ढंग पर चलते हैं। १, ८, ११ रूपों में तो गो भी गौ हो जाता है, और द्यो भी द्यौ। १६ में गो के बाद नाम् भी लगता है। २, १२ में गो का पुराना आधार गा आ जाता है। वहीं द्यो का आधार द्या है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

	रै	गो	द्यो	नौ
१-१८	(राः)	गौः	द्यौः	नौः
२	राम्	गाम्	द्याम्	नावम्
३	राया	गवा	(द्यवा)	नावा
४	राये	गवे	(द्यवे)	(नावे)
५-६	रायः	गोः	द्योः	नावः
७	(रायि)	गवि	द्यवि	नावि
८	(रायौ)	गावौ गावा	द्यावा	(नावौ)
९	(राभ्याम्)	(गोभ्याम्)	(द्योभ्याम्)	(नौभ्याम्)
१०	(रायोः)	(गवोः)	(द्यवोः)	नावोः
११	रायः	गावः	द्यावः	नावः
१२	रायः राः	गाः	(द्याः)	नावः
१३	(राभिः)	गोभिः	(द्योभिः)	नौभिः
१४-१५	(राभ्यः)	गोभ्यः	(द्योभ्यः)	(नौभ्यः)
१६	रायाम्	गवाम् गोनाम्	(द्यवाम्)	(नावाम्)
१७	रासु	गोषु	द्योषु	(नौषु)

(१) रायः १२ में उदात्त कहीं पहले अक्षर पर है, कहीं दूसरे अक्षर पर। सामवेद में एक वार राः भी है। २ पर संस्कृत में रायम् है।

(२) प्रागैतिहासिक णरष का वैदिक रूपान्तर ११ नरस् से नृ शब्द की कल्पना हुई, जिसके वैदिक रूप इस प्रकार हैं - १ (ना) २ नरम् ३ (नरा) ४ नरे ५-६ नरः ७ नरि ८ नरौ ९ (नृभ्याम्) १० (नरोः) ११ नरः १२ नॄन् १३ नृभिः १४-१५ नृभ्यः १६ नराम् नृणाम् १७ नृषु १८ (नः)।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

(६३) एकाक्षर व्यंजनान्त शब्द

एकाक्षर व्यंजनान्त शब्द प्राय: तीनों लिंगों के हैं। वेद की भाषा में उनकी संख्या भी कम नहीं है, जैसा कि संस्कृत में हो गया। कुछ तो व्यंजनान्त धातु ही हैं। कुछ ह्रस्व स्वरान्त धातुओं में त् लगने से बने हैं। कुछ में दो अक्षर हैं, पर व्यवहार में वे एकाक्षर ही हैं, जैसे - यकृत्, शकृत्, कपृथ्, शरद् ककुभ्, अनक्ष्।

(क) निम्नलिखित १८ व्यंजन इन एकाक्षर शब्दों के अन्त में हैं – च् छ् ज् ड् त् थ् द् ध् न् प् भ् म् र् व् श् ष् स् ह्।

(ख) इन व्यंजनान्त शब्दों के बाद जब प्रथमा एकवचन का स् लगता है तो स् तो लुप्त ही हो जाता है, लेकिन अन्तिम

१. च् और स्पर्श ज् हो जाता है क्।
२. स्पृष्टसंघर्षी छ् और ज् तथा स्पृष्टसंघर्षी च् से विकसित श् हो जाता है ट्।
३. ड् हो जाता है ट्।
४. त् थ् द् ध् हो जाता है त्।
५. प् भ् हो जाता है प्।
६. र् स् हो जाता है विसर्ग।
७. कुछ श् हो जाता है क्, कुछ ट्।
८. ष् हो जाता है ट्।
९. घ् का प्रतिनिधि ह् हो जाता है क्, स्पृष्टसंघर्षी झ् से विकसित ह् हो जाता है ट्, तथा ध् का प्रतिनिधि ह् हो जाता है त्।
१०. न् ज्यों का त्यों रह जाता है; म् हो जाता है न्; तथा गौण रूप से आया हुआ अनुस्वार भी न् ही हो जाता है। ञ् बदलता है ङ् में।

इस प्रकार ३३ व्यंजन की जगह पर केवल क् ट् त् प् ङ् न् म् और विसर्ग रह जाता है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

(ग) भकारादि (९, १३-१५) विभक्तियों के पहले क् ट् त् प् घोष ग् ड् द् ब् हो जाता है।

(घ) सु (१७) विभक्ति स्वयं क् र् के बाद मूर्धन्य षु हो जाता है।

(ङ) कुछ एकाक्षर शब्दों के भी १-२, ८, ११ रूप सबल हो जाते हैं। न० ११-१२ रूप सबल होते हैं।

	वाच्	स्रज्	प्रछ् पृछ्	राज्
१-१८	वाक्	स्रक्	प्राट्	राट्
२	वाचम्	स्रजम्	पृछम्	राजम्
३	वाचा	स्रजा	पृछा	राजा
४	वाचे	स्रजे	पृछे	राजे
५-६	वाचः	स्रजः	पृछः	राजः
७	वाचि	स्रजि	पृछि	राजि
८	वाचौ वाचा	स्रजौ	पृछौ	राजौ
९	वाग्भ्याम्	स्रग्भ्याम्	पृड्भ्याम्	राड्भ्याम्
१०	वाचोः	स्रजोः	पृछोः	राजोः
११-१२	वाचः	स्रजः	पृछः	राजः
१३	वाग्भिः	स्रग्भिः	पृड्भिः	राड्भिः
१४-१५	वाग्भ्यः	स्रग्भ्यः	पृड्भ्यः	राड्भ्यः
१६	वाचाम्	स्रजाम्	पृछाम्	राजाम्
१७	वाक्षु	स्रक्षु	पृट्सु	राट्सु

आपृच् न० १-२ आपृक्

क्रुञ्च् १ क्रुङ् ८ क्रुञ्चौ प्रछ् १ प्राट्

भज् न० ११ भाञ्जि

उशिज् १. उशिक् २. उशिजम् ३. उशिजा ४. उशिजे ६. उशिजः ८. उशिजा १०. उशिजोः ११-१२. उशिजः १३. उशिग्भिः १४. उशिग्भ्यः १६. उशिजाम् ।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

उर्ज् १ उर्क्

निर्णिज् १. निर्णिक् ऋत्विज् १ ऋत्विक् २ ऋत्विजम्

अव-याज् १. अवयाः

भ्राज् १ भ्राट्

प्रयज् १७ प्रयक्षु

	मरुत्	पद्	अप्	ककुभ्
१-१८	मरुत्	पाद्	-	ककुप्
२	मरुतम्	पादम्	-	ककुभम्
३	मरुता	पदा	अपा	ककुभा
४	मरुते	पदे	-	ककुभे
५-६	मरुतः	पदः	अपः	ककुभः
७	मरुति	पदि	-	ककुभि
८	मरुतौ	पादौ पादा	आपा	ककुभौ
९	मरुद्भ्याम्	पद्भ्याम्	-	ककुब्भ्याम्
१०	मरुतोः	पदोः	-	ककुभोः
११	मरुतः	पादः	आपः	ककुभः
१२	मरुतः	पदः	अपः	ककुभः
१३	मरुद्भिः	पद्भिः	अद्भिः	ककुब्भिः
१४-१५	मरुद्भ्यः	पद्भ्यः	अद्भ्यः	ककुब्भ्यः
१६	मरुताम्	पदाम्	अपाम्	ककुभाम्
१७	मरुत्सु	पत्सु	अप्सु	ककुप्सु

कपृथ् १. कपृत् वनद् ६. वनदः

पद् २ पादम् को देखकर पाद- शब्द का सूत्रपात हुआ जो लौकिक संस्कृत में छा गया।

वृध् १ वृत्

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

सध-माद् १. सधमाः, - मात्
ब्राह्मण ग्रन्थों में - भृत् - वृत् - हुत् के न० ११ रूप - भृन्ति - वृन्ति - हुन्ति दीखते हैं।
वन् १६ वनाम्
तन् ३ तना
रम् १७ रंसु
गम् ३ ग्मा जम् ३ ज्मा ५-६ ज्मः
क्षम् ५-६ क्ष्मः ८ क्षामा
दम् ६ दन्
नभ् ११ नाभः १२ नभः

	पुर्	गिर्	दिव्	मास्
१-१८	पूः	गीः	द्यौः	माः
२	पुरम्	गिरम्	दिवम्	मासम्
३	पुरा	गिरा	दिवा	मासा
४	पुरे	गिरे	दिवे	मासे
५-६	पुरः	गिरः	दिवः	मासः
७	पुरि	गिरि	दिवि	मासि
८	पुरौ	गिरौ	दिवौ	मासौ
९	पूर्भ्याम्	गीर्भ्याम्	द्युभ्याम्	माद्भ्याम्
१०	पुरोः	गिरोः	दिवोः	मासोः
११-१२	पुरः	गिरः	दिवः द्यून्	मासः
१३	पूर्भिः	गीर्भिः	द्युभिः	माद्भिः
१४-१५	पूर्भ्यः	गीर्भ्यः	द्युभ्यः	माद्भ्यः
१६	पुराम्	गिराम्	दिवाम्	मासाम्
१७	पूर्षु	गीर्षु	द्युषु	माःसु

द्वार् १२ पुरः

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तर् ११ तार:

स्तर् १३ स्तृभि:

स्वर् न० ४ सुरे ६ सुर: ७ स्व:

वार् १७ वार्षु

	दिश्	विश्	द्विष्
१-१८	दिक्	विट्	द्विट्
२	दिशम्	विशम्	द्विषम्
४	दिशा	विशा	द्विषा
५-६	दिश:	विश:	द्विष:
७	दिशि	विशि	द्विषि
८	दिशौ	विशौ	द्विषौ
९	दिग्भ्याम्	विड्भ्याम्	द्विड्भ्याम्
१०	दिशो:	विशो:	द्विषो:
११-१२	दिश:	विश:	द्विष:
१३	दिग्भि:	विड्भि:	द्विड्भि:
१४-१५	दिग्भ्य:	विड्भ्य:	द्विड्भ्य:
१६	दिशाम्	विशाम्	द्विषाम्
१७	दिक्षु	विट्सु विक्षु	द्विट्सु

विश् १७ विक्षु संदिग्ध है ।

कीदृश् १ कीदृङ् तादृश् १ तादृक्

पुरोडाश् १ पुरोडा: ३ ईड् ईडा

इष् १ इट् ४ इषे

अक्षि अनक्ष् १ अनक्।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

	दुह् (= दुघ्)	सह् (= सझ्)	उपानह् (= नध्)
१-१८	धुक्	षाट्	उपानत्
२	दुहम्	साहम्	उपानहम्
३	दुहा	सहा	उपानहा
४	दुहे	सहे	उपानहे
५-६	दुहः	सहः	उपानहः
७	दुहि	सहि	उपानहि
८	दुहौ	सहौ	उपानहौ
९	धुग्भ्याम्	षड्भ्याम्	उपानद्भ्याम्
१०	दुहोः	सहोः	उपानहोः
११	दुहः	साहः	उपानहः
१२	दुहः	सहः	उपानहः
१३	धुग्भिः	षड्भिः	उपानद्भिः
१४-१५	धुग्भ्यः	षड्भ्यः	उपानद्भ्यः
१६	दुहाम्	सहाम्	उपानहाम्
१७	धुक्षु	षट्सु	उपानत्सु

सह् न० ८ सही

दह् १ धक्

सरह् १ सरट्

वह् १ वाट्

उष्णिह् १ उष्णिक्

अनड्-वह् १ अनड्वान् २ अनड्वाहम् ३ अनडुहा ४ अनडुहे ५-६ अनडुहः ७ अनडुहि ८ अनड्वाहौ १३ अनडुद्भिः १७ अनडुत्सु

द्रुह् १ ध्रुक्

रुह् १ रुक्

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

(६४) अनेकाक्षर स्वरान्त शब्द

	पु० देव	स्त्री० प्रिया	न० फल
१	देवः	प्रिया	फलम्
२	देवम्	प्रियाम्	फलम्
३	देवेन,-ना	प्रियया प्रिया	फलेन
४	देवाय	प्रियायै	फलाय
५	देवात्	प्रियायाः	फलात्
६	देवस्य	प्रियायाः	फलस्य
७	देवे	प्रियायाम्	फलानाम्
८	देवौ देवा	प्रिये	फले
९	देवाभ्याम्	प्रियाभ्याम्	फलाभ्याम्
१०	देवयोः	प्रिययोः	फलयोः
११	देवाः, देवासः	प्रियाः प्रियासः	फला फलानि
१२	देवान्	प्रियाः	फला फलानि
१३	देवैः देवेभिः	प्रियाभिः	फलैः फलेभिः
१४-१५	देवेभ्यः	प्रियाभ्यः	फलेभ्यः
१६	देवानाम्	प्रियाणाम्	फलानाम्
१७	देवेषु	प्रियासु	फलेषु
१८	देव	प्रिये	फल

अम्बा १८ अम्ब (यजुर्वेद)। यही रूप संस्कृत में आया। (अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

शुचि

	पु०	स्त्री०	न०
१.	शुचिः	शुचिः	शुचि
२.	शुचिम्	शुचिम्	शुचि
३.	शुच्या, शुचिना	शुच्या शुचि शुची	शुचिना
४.	शुचये	शुचये	शुचये
५-६.	शुचेः	शुचेः	शुचेः
७.	शुचौ शुचा	शुचौ शुचा	शुचौ शुचा
८.	शुची	शुची	शुची
९.	शुचिभ्याम्	शुचिभ्याम्	शुचिभ्याम्
१०.	शुच्योः	शुच्योः	शुच्योः
११.	शुचयः	शुचयः	शुचि शुची शुचीनि
१२.	शुचीन्	शुचीः	शुचि शुची शुचीनि
१३.	शुचिभिः	शुचिभिः	शुचिभिः
१४-१५.	शुचिभ्यः	शुचिभ्यः	शुचिभ्यः
१६.	शुचीनाम्	शुचीनाम्	शुचीनाम्
१७.	शुचिषु	शुचिषु	शुचिषु
१८.	शुचे	शुचे	शुचि

अरि २ अर्यम् अरिम् ६ अर्यः ११-१२ अर्यः

अवि ११ अव्यः

ऊति ४ ऊती

भृति ४ भृत्यै इषु ४ इष्वै ६ इष्वाः

अवनि ११ अवनीः अवनयः

युवति ६ युवत्याः

वेदि ७ वेदी

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

भूमि ५-६ भूम्या: ७ भूम्याम्

पति ३ पत्या ४ पत्ये ५-६ पत्यु: ७ पत्यौ

सखि १ सखा २ सखायम् ३ सख्या ४ सख्ये

५-६ सख्यु: ७ सख्यौ ८ सखायौ सखाया ११ सखाय:

पति के नियमित रूप भी हैं — ४ पतये बृहस्पतये ६ पते: प्रजापते: ७ गोपतौ ३ पतिना बृहस्पतिना।

अक्षि अस्थि दधि सक्थि अबल रूपों में अन् भागान्त हो जाते हैं - ३ दध्ना ६ अक्ष्ण: इत्यादि।

मधु

	पु०	स्त्री०	न०
१.	मधु:	मधु:	मधु
२.	मधुम्	मधुम्	मधु
३.	मध्वा मधुना	मध्वा	मधुना
४.	मधवे	मधवे	मध्वे मधवे मधुने
५-६.	मधो: मध्व:	मधो:	मध्व: मधो: मधुन:
७.	मधवि मधौ	मधौ	मधवि मधौ मधुनि
८.	मधू	मधू	मध्वी
९.	मधुभ्याम्	मधुभ्याम्	मधुभ्याम्
१०.	मध्वो:	मध्वो:	मधुनो:
११.	मधव: मध्व:	मधव: मध्य:	मधु मधू मधूनि
१२.	मधून्	मधू:	- - -
१३.	मधुभि:	मधुभि:	मधुभि:
१४-१५.	मधुभ्य:	मधुभ्य:	मधुभ्य:
१६.	मधूनाम्	मधूनाम्	मधूनाम्
१७.	मधुषु	मधुषु	मधुषु
१८.	मधो	मधो	मधु

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

वसु न० ६ वस्व:

सानु न० ७ सानवि

उरु न० ८ उर्वी

जानु न० ८ जानुनी १० जानुनो:

(क) दीर्घ ईकारान्त रथी (पु० स्त्री०) के रूप लिखित रूप में इस प्रकार हैं: १. रथी: २. रथ्यम् ३. रथ्या ४. रथ्ये ५-६. रथ्य: ७.८. रथ्यौ ९. रथीभ्याम् १०. रथ्यो: ११. रथ्य: १२. रथ्य: १३. रथीभि: १४-१५. रथीभ्य: १६. रथीनाम् १७. रथीषु १८. रथि। दूती ७. दूत्याम् से लौकिक नद्याम् बनने लगे। हर लौकिक रूप के प्रतिनिधि वेद में मिल ही जाते हैं।

मंत्र पाठ में रथ्यम् पढ़ा जाता है रथिअम्, रथ्या = रथिआ, रथ्ये = रथिए, इत्यादि। उसी प्रकार नद्यम् = नदिअम्, यम्यम् = यमिअम्, कुमार्यम् = कुमारिअम्।

(ख) प्रथम अक्षर पर गुण स्वर होने के कारण, देवी शब्द का रूप कुछ बहक जाता है, १. देवी २. देवीम् ३. देव्या ४. देव्यै ५-६. देव्या: ७. देव्याम् ८. देवी ९. देवीभ्याम् १०. देव्यो: ११. देवी: १२. देवी: १३. देवीभि: १४-१५. देवीभ्य: १६. देवीनाम् १७. देवीषु १८. देवि। संस्कृत में देवी ११ पर देव्य: हो जाता है।

१. एकाक्षर स्त्री० शब्द कहीं-कहीं अनेकाक्षर का व्यवहार रखता है। १. स्त्री २. स्त्रियम् ११-१२. स्त्रिय: ४. स्त्रियै (अथर्व०) ६. स्त्रिया: ७. स्त्रियाम्। संस्कृत में २ स्त्रीम् भी १२ स्त्री: भी।

२. दीर्घ ऊकारान्त तनू पुरानी ही राह पर चलता है। १. तनू: २. तन्वम् = तनुअम् ३. तन्वा = तनुआ ४. तन्वे = तनुए ५-६. तन्व: = तनुअ: ७. तन्वि = तनुइ तनू ८. तन्वा = तनुआ (इत्यादि) ९. तनूभ्याम् १०. तन्वो: ११-१२. तन्व: १३. तनूभि: १४-१५. तनूभ्य: १६. तनूनाम् १७. तनूषु १८. तनु।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

३. संस्कृत में वधू शब्द यद्यपि नदी की कोटि में आ गया है, फिर भी १ वधूः ही है। ७ वध्वाम्।
४. ऋग्वेद में श्वश्रू १६ श्वश्र्वाम् = श्वश्रुआम् है। शुक्ल यजुर्वेद में तनू ४ तन्वै ६ तन्वाः।

(६५) अनेकाक्षर व्यंजनान्त शब्द

ये शब्द धातु और प्रत्यय के योग से बने हैं। इनके दो दल हैं — कुछ के १-२, ८ और ११ रूप सबल होते हैं, शेष अबल। कुछ के अबल रूपों में भी भेद है — व्यंजनादि विभक्ति वाले (९, १३-१५ और १७) रूप मध्यम कहलाते हैं, शेष स्वरादि विभक्ति वाले (३-७, १०, १२, १६) अबल। १८ रूप तो सबल ही होता है, पर उदात्त प्रथम अक्षर पर आ जाने से रूप कुछ छोटा हो जाता है।

(क) अत्, वत्, मत् और यस् भागान्त शब्दों के रूप सबल और अबल होते हैं। सबल रूपों में आधार अन्त् वन्त् मन्त् और यांस् रहते हैं। इन् मिन् विन् भागान्त शब्दों का पहला रूप ही सबल होता है।
(ख) अन् मन् वन् वस् और अञ्च् भागान्त शब्दों के रूप सबल, मध्यम और अबल होते हैं।

(६६) सबल और अबल रूप

	अदत्	गोमत्	गरीयस्
१.	अदन्	गोमान्	गरीयान्
२.	अदन्तम्	गोमन्तम्	गरीयांसम्
३.	अदता	गोमता	गरीयसा
४.	अदते	गोमते	गरीयसे
५-६.	अदतः	गोमतः	गरीयसः
७.	अदति	गोमति	गरीयसि
८.	अदन्तौ	गोमन्तौ	गरीयांसौ
९.	अदद्भ्याम्	गोमद्भ्याम्	गरीयोभ्याम्
१०.	अदतोः	गोमतोः	गरीयसोः

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

११.	अदन्तः	गोमन्तः	गरीयांसः
१२.	अदतः	गोमतः	गरीयसः
१३.	अदद्भिः	गोमद्भिः	गरीयोभिः
१४-१५.	अदद्भ्यः	गोमद्भ्यः	गरीयोभ्यः
१६.	अदताम्	गोमताम्	गरीयसाम्
१७.	अदत्सु	गोमत्सु	गरीयःसु
१८.	अदन्	गोमन्	गरीयन्

न० १-२ अदत् गोमत् गरीयः ८ अदती गोमती गरीयसी ११-१२ अदन्ति गोमन्ति गरीयांसि।

(क) महत् के सबल रूप सबलतर होते हैं — १. महान् ८. महान्तौ ११. महान्तः न० ११-१२. महान्ति

(ख) दुहराये हुए आधार पर सबल अबल भेद नहीं रहता — ददत् १. ददत् ८. ददतौ ११. ददतः २. ददतम् जगत् न० १-२. जगत् ८. जगती ११-१२. जगन्ति।

(ग) हस्तिन् १. हस्ती ८. हस्तिनौ ११. हस्तिनः २. हस्तिनम् ३. हस्तिना, इत्यादि। मध्यम रूपों में न् हट जाता है — ९. हस्तिभ्याम् १७. हस्तिषु।

(६७) सबल, मध्यम और अबल रूप

	राजन्	ग्रावन्	विद्वस्
१.	राजा	ग्रावा	विद्वान्
२.	राजानम्	ग्रावाणम्	विद्वांसम्
३.	राज्ञा	ग्राव्णा	विदुषा
४.	राज्ञे	ग्राव्णे	विदुषे
५-६.	राज्ञः	ग्राव्णः	विदुषः
७.	राज्ञि राजनि राजन्	ग्राव्णि	विदुषि
८.	राजानौ	ग्रावाणौ	विद्वांसौ

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

९.	राजभ्याम्	ग्रावभ्याम्	विद्वद्भ्याम्
१०.	राज्ञोः	ग्राव्णोः	विदुषोः
११.	राजानः	ग्रावाणः	विद्वांसः
१२.	राज्ञः	ग्राव्णः	विदुषः
१३.	राजभिः	ग्रावभिः	विद्वद्भिः
१४-१५.	राजभ्यः	ग्रावभ्यः	विद्वदभ्यः
१६.	राज्ञाम्	ग्राव्णाम्	विदुषाम्
१७.	राजसु	ग्रावसु	विद्वत्सु
१८.	राजन्	ग्रावन्	विद्वन्

न० कर्मन् १. कर्म ८. कर्मणी ११-१२. कर्माणि, कर्मा कर्म ।

चकृवस् के मुख्य रूप — १. चकृवान् २. चकृवांसम् ८. चकृवांसौ-सा ११. चकृवांसः ३. चक्रुषा १३. चकृवद्भि १७. चकृवत्सु १८. चकृवः

(क) अञ्च् भागान्त शब्द न्यञ्च्, सम्यञ्च्, तिर्यञ्च्, प्रत्यञ्च् आदि हैं।

	प्रत्यञ्च्	**प्राञ्च्**	**उदञ्च्**
१.	प्रत्यङ्	प्राङ्	उदङ्
२.	प्रत्यञ्चम्	प्राञ्चम्	उदञ्चम्
३.	प्रतीचा	प्राचा	उदीचा
४.	प्रतीचे	प्राचे	उदीचे
५-६.	प्रतीचः	प्राचः	उदीचः
७.	प्रतीचि	प्राचि	उदीचि
८.	प्रत्यञ्चौ	प्राञ्चौ	उदञ्चौ
९.	प्रत्यग्भ्याम्	प्राग्भ्याम्	उदग्भ्याम्
१०.	प्रतीचोः	प्राचोः	उदीचोः
११.	प्रत्यञ्चः	प्राञ्चः	उदञ्चः

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

१२.	प्रतीचः	प्राचः	उदीचः
१३.	प्रत्यग्भिः	प्राग्भिः	उदग्भिः
१४-१५.	प्रत्यग्भ्यः	प्राग्भ्यः	उदग्भ्यः
१६.	प्रतीचाम्	प्राचाम्	उदीचाम्
१७.	प्रत्यक्षु	प्राक्षु	उदक्षु

(ख) अनियमित रूप

१. पन्थाः (ऋग्वेद) पन्था (अथर्व०) २. पन्थाम् (ऋग्वेद) पन्थानम् (अथर्व०) ११. पन्थाः (ऋग्वेद) पन्थानः (अथर्व०) ३. पथा १३. पथिभिः इत्यादि।

१. श्वा २. श्वानम् ८. श्वानौ ११. श्वानः ३. शुना १३. श्वभिः इत्यादि।

१. युवा २. युवानम् ८. युवानौ ११. युवानः ३. यूना १३. युवभिः इत्यादि।

१. मघवा २. मघवानम् ८. मघवाना ११. मघवानः ३. मघोना १३. मघवभिः इत्यादि।

(ग) पुम् पुंस् पुमांस्

१. पुमान् २. पुमांसम् ३. पुंसा ४. पुंसे ५-६. पुंसः ७. पुंसि ८. पुमांसौ ९. पुम्भ्याम् १०. पुंसोः ११. पुमांसः १२. पुंसः १३. पुंभिः १४-१५. पुंभ्यः १६. पुंसाम् १७. पुंषु १८. पुमन्।

(घ) न० मनस् हविस् आयुस् के रूप

१-२. मनः हविः आयुः ८. मनसी हविषी आयुषी ११-१२. मनांसि हवींषि आयूंषि ३ मनसा हविषा आयुषा १३. मनोभिः हविर्भिः आयुर्भिः १७. मनःसु हविःषु आयुःषु, इत्यादि।

अंगिरस् पु० १. अंगिराः

उषस् स्त्री० १. उषाः

(ङ) अपस् न० १-२ अपः ८ अपसी ११-१२ अपांसि पु० स्त्री० १. अपाः २. अपसम् ८. अपसौ अपसा ११-१२. अपसः, इत्यादि।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

न० अपस् आद्युदात्त है, स्त्री० पु० अन्तोदात्त।
उसी तरह यशस् भी — न० = यश, स्त्री० पु० = यशस्वी, अप्सरस् स्त्री० अन्तोदात्त है।
चक्षुस् न० (आँख) और पु० (देखने वाला) के रूप इस प्रकार हैं।
न० १-२. चक्षुः ८. चक्षुषी ११-१२. चक्षूंषि
पु० १. चक्षुः २. चक्षुषम् ८. चक्षुषौ ११. चक्षुषः ।

	पितृ (पु०)	मातृ (स्त्री०)	दातृ (पु०)	स्वसृ (स्त्री०)
१.	पिता	माता	दाता	स्वसा
२.	पितरम्	मातरम्	दातारम्	स्वसारम्
३.	पित्रा	मात्रा	दात्रा	स्वस्रा
४.	पित्रे	मात्रे	दात्रे	स्वस्रे
५-६.	पितुः	मातुः	दातुः	स्वसुः
७.	पितरि	मातरि	दातरि	-
८.	पितरौ - रा	मातरौ-रा	दातारौ-रा	स्वसारौ-रा
९.	पितृभ्याम्	मातृभ्याम्	दातृभ्याम्	-
१०.	पित्रोः	मात्रोः	दात्रोः	स्वस्रोः
११.	पितरः	मातरः	दातारः	स्वसारः
१२.	पितृन्	मातृः	दातृन्	स्वसृः
१३.	पितृभिः	मातृभिः	दातृभिः	स्वसृभिः
१४-१५.	पितृभ्यः	मातृभ्यः	दातृभ्यः	-
१६.	पितृणाम्	मातृणाम्	दातृणाम्	स्वसृणाम् स्वस्राम्
१७.	पितृषु	मातृषु	दातृषु	-
१८.	पितः	मातः	दातः	-

देवृ २. देवरम् ११. देवरः १७. देवृषु उसृ ६. उस्रः ७. उस्रि उस्राम् १२. उस्रः १८. उषः।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

(६८) सर्वनाम

	उत्तम पुरुष	मध्यम पुरुष
१.	अहम्	त्वम्
२.	माम् मा	त्वाम् त्वा
३.	मया	त्वया त्वा
४.	मह्यम् मह्य मे	तुभ्यम् ते
५.	मत्	त्वत्
६.	मम मे	तव ते
७.	मयि	त्वयि त्वे
८.	आवम् (हम दोनों ने) वाम्	युवम् (तुम दोनों ने)
	आवाम् (हम दोनों को) नौ	युवाम् (तुम दोनों को) वाम्
९.	आवाभ्याम् आवद्	युव (वा) भ्याम् युवद्
१०.	आवयोः	युवयोः युवोः
११.	वयम्	यूयम्
१२.	अस्मान् नः	युष्मान् वः
१३.	अस्माभिः	भुष्माभिः
१४.	अस्मभ्यम् अस्मे नः	युष्मभ्यम् युष्मे वः
१५.	अस्मत्	युष्मत्
१६.	अस्माकम्	युष्माकम् वः
१७.	अस्मासु अस्मे	युष्मासु युष्मे

११ यूयम् के साथ यूषम् भी, १२ युष्माः स्त्री० (शुक्लय०)। समास के पूर्वपद के रूप में म (एकव०) अस्म - (बहु०) तथा त्व-युव-युष्म है। संस्कृत में, एकव० के लिये मत् त्वत् तथा बहुवचन के लिये अस्मद् युष्मद् है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

(६९) प्रथम पुरुष

'यह' के लिये दो शब्द हैं, 'वह' के लिये भी दो - तीनों लिंगों में।

वह

	पु०	स्त्री०	पु०	स्त्री०
१.	सः	सा	असौ	असौ
२.	तम्	ताम्	अमुम्	अमूम्
३.	तेन	तया	अमुना	अमुया
४.	तस्मै	तस्यै	अमुष्मै	अमुष्यै
५.	तस्मात्	तस्याः	अमुष्मात्	अमुष्याः
६.	तस्य	-	अमुष्य	अमुष्याः
७.	तस्मिन्	तस्याम्	अमुष्मिन्	अमुष्याम्
८.	तौ	ते	अमू	-
९.	ताभ्याम्	ताभ्याम्	-	-
१०.	तयोः	तयोः	-	-
११.	ते	ताः	अमी	अमूः
१२.	तान्	ताः	अमून्	अमूः
१३.	तैः तेभिः	ताभिः	-	-
१४-१५.	तेभ्यः	ताभ्यः	अमीभ्यः	-
१६.	तेषाम्	तासाम्	अमीषाम्	-
१७.	तेषु	तासु	अमीषु	-

न० १-२ तत् ८ ते ११-१२ ता तानि
अदः	अमू

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

यह

	पु०	स्त्री०	पु०	स्त्री०
१.	एषः	एषा	अयम्	इयम्
२.	एतम्	एताम्	इमम्	इमाम्
३.	एतेन	एतया	एना अनेन	अनया अया
४.	एतस्मै	एतस्यै	अस्यै इमस्मै	अस्यै
५.	एतस्मात्	एतस्याः	अस्मात् आद्	अस्याः
६.	एतस्य	एतस्याः	अस्य इमस्य	अस्याः
७.	एतस्मिन्	एतस्याम्	अस्मिन्	अस्याम्
८.	एतौ एता	एते	इमौ इमा	इमे
९.	एताभ्याम्	-	-	-
१०.	एतयोः	-	-	-
११.	एते	एताः	इमे	इमाः
१२.	एतान्	एताः	इमान्	इमाः
१३.	एतैः एतेभिः	एताभिः	एभिः	आभिः
१४-१५.	एतेभ्यः	एताभ्यः	एभ्यः	आभ्यः
१६.	एतेषाम्	एतासाम्	एषाम्	आसाम्
१७.	एतेषु	एतासु	एषु	आसु

न० १-२ एतत् ११-१२ एता एतानि १ इदम् ८ इमे ११-१२ इमा इमानि।

एन	२ पु०	एनम् स्त्री०	एनाम्	न० एनत्
	८.	एनौ	एने	-
	१२.	एनान्	एनाः	-
	३.	एनेन	-	-

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

	१०.	एनो:	(ऋग्वेद)
		एनयो:	(अथर्व०)

त्व (कोई) १ पु० त्व: स्त्री० त्वा न० त्वत्

२.	त्वम्	-	-
३.	त्वेन	-	-
४.	त्वस्मै	त्वस्यै	-
११.	त्वे	-	-

मंत्रपाठ में त्वस्मै को तुअस्मै ही पढ़ते हैं।

	कौन		जो	
	पु०	स्त्री०	पु०	स्त्री०
१.	क:	का	य:	या
२.	कम्	काम्	यम्	याम्
३.	केन	कया	येन येना	यया
४.	कस्मै	-	यस्मै	-
५.	कस्मात्	-	यस्मात्	-
६.	कस्य, कयस्य	कस्या:	यस्य	यस्या:
७.	कस्मिन्	-	यस्मिन्	यस्याम्
८.	कौ	-	यौ या	ये
९.	काभ्याम्	-	याभ्याम्	-
१०.	कयो:	-	ययो: यो:	ययो:
११.	के	का:	ये	या:
१२.	कान्	का:	यान्	या:
१३.	केभि:	-	यै: येभि:	याभि:
१४-१५.	केभ्य:	-	येभ्य:	याभ्य:
१६.	केषाम्	-	येषाम्	यासाम्
१७.	केषु	कासु	येषु	यासु

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

न० १-२ यत् ८ ये ११-१२ या यानि
किम् कत् - का कानि
नकिः मा किः = कोई नहीं, कुछ नहीं

स्व १-२ स्वयम् (अव्यय)

पु० १. स्वः २. स्वम् ३. स्वेन स्वेना ४. स्वाय ५. स्वात्
६. स्वस्य ७. स्वे स्वस्मिन् ११. स्वाः १२. स्वान् १३.
स्वैः स्वेभिः १४-१५. स्वेभ्यः १६. स्वानाम् १७. स्वेषु।

स्त्री० १. स्वा २. स्वाम् ३. स्वया ४. स्वायै ५. स्वायाः ६.
स्वस्याः (ऋग्वेद) ७. स्वायाम् ११-१२. स्वाः १३. स्वाभिः
१७. स्वासु

न० १-२. स्वम् ११-१२. स्वा

	अन्य		सर्व/विश्व	
	पु०	**स्त्री०**	**पु०**	**स्त्री०**
१.	अन्यः	अन्या	सर्वः	-
२.	अन्यम्	अन्याम्	-	-
३.	अन्येन	अन्यया	-	-
४.	अन्यस्मै	अन्यस्यै	सर्वस्मै विश्वाय	सर्वस्यै
५.	-	-	सर्वस्मात् विश्वात्	-
६.	अन्यस्य	अन्यस्याः	-	-
७.	अन्यस्मिन्	अन्यस्याम्	विश्वस्मिन् विश्वे	-
८.	-	अन्ये	-	-
९.	-	-	-	-
१०.	-	-	-	-
११.	अन्ये	अन्याः	सर्वे विश्वे	-
१२.	अन्यान्	-	-	-

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

१३.	अन्यैः अन्येभिः अन्याभिः			-	-
१४-१५.	अन्येभ्यः		-	-	-
१६.	अन्येषाम्	अन्यासाम्	सर्वेषाम्	विश्वेषाम्	विश्वासाम्
१७.	अन्येषु	अन्यासु		-	-

न० १-२ अन्यत् ८. - ११-१२. अन्या

एक (कोई) ६ स्त्री० एकस्याः ७. पु० एकस्मिन् एके ११ पु० एके

न० १ एकम्

उत्तर पु० ५ उत्तरस्मात् उत्तरात् ७. उत्तरस्मिन् उत्तरे स्त्री० ७. उत्तरस्याम् ११. पु० उत्तरे १६. उत्तरेषाम्

अव (यह) १० अवोः = अवयोः अवोर्वाम्

अम (यह) १ अमः अमोऽहमस्मि

सम (कोई, हरएक) २. समम् ४. समस्मै ५. समस्मात् ६. समस्य ७. समस्मिन् ११. समे

(७०) संख्या

	पु०	स्त्री०	न०
१.	एकः	एका	एकम्
२.	एकम्	एकाम्	एकम्
३.	एकेन	एकया	एकेन
४.	-	-	-
५.	-	-	-
६.	एकस्य	एकस्याः	-
७.	एकस्मिन्	-	-
८.	द्वा द्वौ	द्वे	द्वे
९.	-	द्वाभ्याम्	-

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

१०.	-		द्वयो:		-
११.	त्रय:	चत्वार:	तिस्र:	चतस्र:	त्रीणि
१२.	त्रीन्	चतुर:	-	-	चत्वारि
१३.	त्रिभि:	चतुर्भि:	तिसृभि:	चतसृभि:	
१४-१५.	त्रिभ्य:	चतुर्भ्य:	तिसृभ्य:	चतुर्भ्य:	
१६.	त्रीणाम्	चतुर्णाम्	तिसृणाम्	चतसृणाम्	
१७.	त्रिषु	चतुर्षु	तिसृषु	चतसृषु	

११-१२.	पंच	षट्	सप्त	अष्टा अष्टौ	नव	दश
१३.	पंचभि:	षड्भि:	सप्तभि:	अष्टाभि:	नवभि:	दशभि:
१४-१५.	पंचभ्य:	षड्भ्य:	सप्तभ्य:	अष्टाभ्य:	नवभ्य:	दशभ्य:
१६.	पंचानाम्	षण्णाम्	सप्तानाम्	अष्टानाम्	नवानाम्	दशानाम्
१७.	पंचसु	षट्सु	सप्तसु	अष्टासु	नवसु	दशसु

विंशति २० त्रिंशत् ३० चत्वारिंशत् ४० पंचाशत् ५० षष्टि ६० सप्तति ७० अशीति ८० नवति ९० शत न० १००

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

(७१) अव्यय, उपसर्ग और निपात

शब्दरूपों के प्रसंग में एक बात बता दें कि संस्कृत में कुछ ऐसे शब्द हैं जो रूप से तो घिसे-पिटे शब्द लगते हैं पर, चूंकि इनके सारे रूप नहीं मिलते और उनके अर्थ भी रूढ हो गये हैं, लोगों ने उन्हें अव्यय की कोटि में रख दिया है।

(क) प्रथम कोटि में ये शब्द हैं — भूयस्, नक्तम्, सायम्, प्रातर्,सहसा, अग्रे, दिवा, शनैः, पश्च, पश्चा, पश्चात्, साक्षात् इत्यादि।

१. कुछ अव्यय तो खास-खास प्रत्ययों से बने दीखते हैं — यथा, कथा तदा, यदा, द्विधा, त्रिधा, अतस्, अधस्तात्, पुरस्तात्, तिरस्, पुरस्, अत्र, तत्र, इत्यादि।

(ख) लेकिन इन सबों से भिन्न ऐसे छोटे-छोटे शब्द हैं जो स्वतः उत्पन्न मालूम पड़ते हैं। इन्हें उपसर्ग कहते हैं — अति अभि अपि अनु प्रति परि उप अधि वि आ सम् अव, इत्यादि।

१. प्रायः ये धातु के पहले रहते हैं, कभी बाद में भी, और कभी तो हटकर भी। ये एक ओर क्रिया के अर्थ को प्रभावित करते हैं, दूसरी ओर खास किसी कारक से संबंध रखते हैं। कहते हैं कि उनके भी अपने कुछ अर्थ हैं, पर उनमें क्रिया के अर्थ को बदलने की शक्ति अधिक है।

(ग) आगे ऐसे धातुरूप से भी मुलाकात होगी जो क्रिया होकर भी अव्यय हैं। वे हैं पूर्वकालिक क्रिया और क्रियार्था क्रिया।

(घ) इन सबों से भिन्न कुछ निपात हैं — अंग, अथ, अध, अपि, अरम्,

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अह, इति, आ, आद्, इत्यादि। ये व्याकरण के विषय नहीं है। पर इनका विशिष्ट प्रयोग जानना चाहिये।

(ङ) वेद में, उपसर्गों से भी प्रत्यय द्वारा शब्द बनते हैं - प्र प्रवत्, उद् उद्वत्, परावत् निवत्। इनके रूप अनेक कारकों में मिलते हैं।

१. संस्कृत में, इन अव्ययों, उपसर्गों और निपातों को भी जोड़कर नये शब्द बना लिये गये हैं - उत् च अव च = उच्चावच, निस् च प्रच = निश्चप्रच। बहुत से शब्दकोषों में इनके अर्थ भी नहीं बताये गये हैं।

(च) प्राक्संस्कृत से आया हुआ शम् योस् वेद में अव्यय की तरह दीखता है। कुछ शब्द - द्र व्र इत्यादि अभी भी गूढ़ बने हुए हैं। ऋग्वेद के मण्डूक सूक्त में मेढ़कों को नरः कहा गया है, जो प्राणिमात्र वाचक है। अथर्ववेद में स्त्री मेढ़क को तादुरी कहा गया है। ये सब शब्द वेद की भाषा में पैदा नहीं हुए थे। ये पहले से ही आ रहे थे और उनको जन्म देने वाले धातु पहले ही लुप्त हो चुके थे।

संक्षेप में, अव्यय, उपसर्ग और निपात वे शब्द हैं जो वैदिक भाषा से बहुत पहले पैदा हुए और अपनी वंशावली भूल गये।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

धातुरूप

(७२) क्रिया के सबसे छोटे स्वरूप को धातु कहते हैं। धातु का सम्बन्ध काल और अर्थ से होता है। धातुओं के रूप अनेक कालों और अर्थों में कर्ता या कर्म के तीन पुरुषों और तीन वचनों के अनुसार बदलते हैं। उन्हें धातुरूप कहते हैं।

(क) धातुरूपों के अन्त में जो तत्त्व होते हैं उन्हें विभक्ति कहते हैं। वस्तुत: विभक्तियों से ही हम किसी धातुरूप को ठीक-ठीक पहचान पाते हैं।

(ख) पाणिनि ने धातु में लगने वाली विभक्तियों को सम्मिलित रूप से लकार कहा है। लकार दस हैं। अलग अलग उनके नाम ये हैं — लट्, लिट्, लुट्, लृट्, लेट्, लोट्, लङ्, लिङ्, लुङ् लृङ्। वेद की प्राचीन भाषा में दो लकारों के योग भी दीखते हैं — पहला भाग लट् लिट् लुङ् लृट् का आधार होता है, दूसरा भाग लट् लङ् लेट् लोट् लिङ् की विभक्ति।

(७३) लट् वर्तमान काल की विभक्तियाँ हैं, लङ् भूतकाल की। दोनों के स्वरूप में बहुत अन्तर है — एक मौलिक है, दूसरी विकृत। लुङ् हू-ब-हू लङ् ही है, पर लुङ् के आधार भिन्न हैं। लङ् आज का भूत नहीं है। कहते हैं, यह अनद्यतन भूत है। लुङ् आसन्नभूत है। लिट् उस भूतकाल के लिये है जो पहले कभी शुरू हुआ और अभी भी चल रहा है या अभी-अभी खत्म हुआ है। यह अपूर्ण भूत है। पर पाणिनि उसे परोक्ष के लिये कहते हैं। भविष्यत्काल के रूप लट् विभक्तियों से बनते हैं, लेकिन उनका आधार अलग होता है। लुट् भी भविष्यत्काल के लिये

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

है, पर वह बहुत आगे की बात बताता है, कम से कम आज का नहीं है। यह भी अनद्यतन है।

(क) अर्थ तीन हैं - लेट् लोट् और लिङ्। अभिप्राय के विचार से ये घुले मिले हैं, लेकिन लोट् आज्ञावाचक है, लिङ् इच्छावाचक है, और लेट् दोनों के बीच में है। लेट् निश्चय बताता है। फिर भी, ऋग्वेद में लेट् और लिङ् दायें-वायें चलते हैं और स्पष्ट भेद बताना कठिन जान पड़ता है। इसलिये पाणिनि कहते हैं — लिङर्थे लेट्। पर बाद में लिङ् हावी होने लगता है और संस्कृत के द्वार तक आते-आते लेट् को उखाड़ फेंकता है। लिङ् विभक्तियों के भीतर एक-स्-घुसा कर आशीर्लिङ् की कल्पना हुई। स्वरूपतः ये दोनों घुलेमिले हैं। केवल-स्-द्वारा ही इनके भेद की पहचान होती है।

(ख) भूतकाल को दिखाने के लिये उनकी विभक्तियाँ तो हैं हीं जो कहीं-कहीं अर्थों की विभक्तियों से टकरा जाती है। पर भूतकाल के रूपों की पहचान है उनके पहले लगने वाला आगम अ - (व्यंजनादि धातु के पहले) या आ - (स्वरादि धातु के पहले, जो इ उ ऋ के साथ मिलकर ऐ - औ- आर् हो जाता है)। यह तो हुई एक बात।

(ग) दूसरी बात यह है कि जब भूतकाल का वह आगम हट जाता है तो वह धातुरूप आज्ञार्थक हो जाता है। संस्कृत में तो यह सदा मा (नहीं) के साथ रहता है, वेद में इसके विना भी। इसे आगम्रहित आज्ञार्थक भूत (विनियोगार्थ) कह सकते हैं।

(घ) स्वरूप से लृङ् तो भविष्यात्मक भूत है, पर अभिप्राय से यह 'यदि - तो' का सम्बन्ध बताता है। इसका आगम कभी नहीं हटता, न इसके साथ मा का ही योग बैठता है।

(७४) विभक्तियाँ धातुओं में प्रायः सीधे नहीं लगती। धातुओं में भी कुछ तत्त्व जोड़े जाते हैं, जिन्हें विकरण कहते हैं। कभी धातु दुहरा जाते हैं, जिसे अभ्यास कहते हैं। जहाँ कुछ भी जुड़ा हुआ नहीं दीखता

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

वहाँ, कहते हैं, शून्य (०) जोड़ा गया है। विकरण से आधार या अंग बनता है। उस आधार पर विभक्ति लगती है। अतः धातुरूप के तीन अवयव हैं - धातु + विकरण + विभक्ति। सामान्यतः आधार और विभक्ति से धातुरूप का विभाजन करते हैं — भव-ति, ए-ति इतः यन्ति, जुहो - ति, इत्यादि।

(७५) लट् के आधार या अंग बनाने के लिये दस विकरण हैं और उन अंगों का एक सम्मिलित नाम सार्वधातुक है, क्योंकि इनमें सभी धातु समेट लिये जाते हैं। सार्वधातुक अंग पर लट् लङ् लेट् लोट् और लिङ् विभक्तियाँ लगती हैं।

शेष आधारों या अंगों को पाणिनि ने आर्धधातुक कहा है, पर उनके भी कम से कम दो भेद हैं।

(७६) संस्कृत में तो लिट् अकेला है, पर वेद में इसी के आधार पर लङ् लेट् लोट् और लिङ् विभक्तियाँ जोड़ी जाती है। इसलिये इन रूपों को लिट् + लङ्, लिट् + लेट्, लिट् + लोट् तथा लिट् + लिङ् कहेंगे।

लङ् वाले रूपों में धातु के पहले अ-आ आगम भी लगता है।

(७७) फिर संस्कृत में तो लुङ् अकेला है और इनके आधार अनेक विकरणों से बनते हैं, पर वेद में इन्हीं आधारों में लेट् लोट् और लिङ् विभक्तियाँ लगती हैं। इन रूपों को लुङ् + लेट्, लुङ् + लोट् तथा लुङ् + लिङ् कहेंगे।

स् युक्त लिङ् विभक्तियों से आशीर्लिङ् के रूप बनते हैं और ये लुङ् आधार से ही संबद्ध हैं।

लुङ् वाले रूपों में धातु के पहले अ आ आगम भी लगते हैं।

(क) काल के विचार से लुङ् और लङ् में ज्यादा भेद नहीं है। दोनों सामान्य रूप से भूतकाल के लिये हैं, पर पहला आसन्न भूत है और दूसरा उससे भी पहले का। जहाँ लुङ् और लङ् एक साथ आता है वहाँ पहला दूसरे के बाद की घटना है।

(७८) वैदिक भाषा के संध्याकाल में लुङ् के ही-स् और-इष् विकरण

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

वाले आधारों को य से आगे बढ़ाकर और उसमें लट् और लङ् विभक्ति जोड़कर भविष्य और भविष्यात्मक भूत के रूप बने जिन्हें पाणिनि लृट् और लृङ् कहते हैं। लृङ् में धातु के पहले अ आगम भी लगता है। यदि इसे अलग आधार मान लें तो यह चौथा अंग होगा।

(क) इस अंग में भी लेट् की विभक्ति देखी गयी है, पर इसका प्रचलन कभी नहीं बढ़ा।

७९. इनके अलावा भी, एक तरह के धातुरूप हैं जो धातु से सीधे नहीं बनते। न इनमें सारी विभक्तियाँ ही लगती हैं।

(क) धातु से तृ प्रत्यय द्वारा संज्ञा या विशेषण बनाकर, उसके प्रथमा वाले रूपों को प्रथम पुरुष में प्रयोग करते हैं — गम् गन्तृ गन्ता गन्तारौ गन्तार:। आगे, प्रथमा-एकवचन के रूप में अस् धातु के लट् मध्यम पुरुष तथा उत्तम पुरुष के रूपों को लगाकर मध्यम पुरुष और उत्तम पुरुष में प्रयोग करते हैं। २. गन्तासि गन्तास्थ: गन्तास्थ गन्तास्मि गन्तास्व: गन्तास्म:।

(८०) ऐसे ही धातुरूपों का एक और समुदाय है, जिसमें धातु को अया द्वारा फैलाकर और उसमें द्वितीया विभक्ति लगाकर (गम् गमया गमयाम् = गमयां) फिर उसमें कृ भू अस् के लिट् वाले रूपों को जोड़ते हैं — गमयां-चकार - चक्रतु: - चक्रु:, गमयां बभूव - बभूवतु: - बभूवु:, गमयामास गमयामासतु: गमयामासु:।

(८१) लङ् लुङ् तथा लिट् + लङ् वाले रूपों में धातु के पहले वाला अ आगम जब हट जाता है तो वह आज्ञार्थक हो जाता है- अभवत् - भवत्, अभूत् - भूत्, इत्यादि। वेद में तो कभी-कभी, पर संस्कृत में उसके साथ हमेशा मा (नहीं) लगा रहता है।

(८२) लकार वाले धातुरूपों के सिवा, संस्कृत भाषा में सार्वधातुक आधार, लिट् आधार, लुङ् आधार तथा लृट् आधार पर बने क्रियात्मक विशेषण भी है।

(क) सीधे धातुओं से भी निष्ठा प्रत्यय द्वारा बने हुए भूतकालिक क्रियात्मक विशेषण है, कृत्य प्रत्यय द्वारा बने हुए भविष्यात्मक क्रियात्मक विशेषण हैं।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

(ख) सीधे धातुओं से बने हुए पूर्वकालिक क्रिया और क्रियार्था क्रिया नामक दो क्रियात्मक अव्यय भी है।

(ग) साधरण धातुओं के अय प्रत्यय द्वारा बनी हुई प्रेरणार्थक क्रिया (णिजन्त), दुहराये हुए धातुओं से - स-प्रत्यय वाली इच्छाबोधक (सन्नन्त) तथा - य - अथवा शून्य (०) प्रत्यय वाली पौनः पुन्य बोधक क्रिया (यङन्त, यङ्लुगन्त) भी है।

(घ) संज्ञा और विशेषण से बनी नयी क्रियायें भी हैं, जिन्हें नामधातु कहते हैं।

यह है संक्षेप में समस्त धातुरूपों का सर्वेक्षण।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

सार्वधातुक

(८३) जहाँ अन्य अंग सीमित धातुओं से सम्बन्ध रखते हैं, सार्वधातुक अंग संस्कृत के सभी धातुओं में व्याप्त है। वे जिन विकरणों से बनते हैं वे सभी पाणिनि के श् अनुबन्ध से युक्त हैं — १ शप् (अ), २. शप् का लोप (०), ३. श्लु (०), ४. श्यन् (य), ५. श्नु (नु), ६. श (अ), ७. श्नम् (न), ८. शप् का उ, ९. श्ना(ना), १०. शप् का णिच् = अय। पाणिनि संक्षेप में कहते हैं — तिङ्शित्सार्वधातुकम्। कहने का तात्पर्य कि सार्वधातुक आधार दस तरह से बनते हैं। इसलिये संस्कृत के सारे धातु दस गणों में बाँट दिये गये हैं। उनके नाम उसी क्रम से ये हैं — १. भू भ्वादि २. अद् अदादि ३. हु जुहोत्यादि ४. दिव् दिवादि ५. सु स्वादि ६. तुद् तुदादि ७. रुध् रुधादि ८. तन् तनादि ९. क्री क्र्यादि १०. चुर् चुरादि।

(८४) तो स्पष्ट रूप से बता दें कि भ्वादि गण के धातुओं में - अ विकरण लगता है। अदादि में ०; जुहोत्यादि में भी ०, लेकिन धातु दुहरा जाता है; दिवादि गण में - य -; तुदादि गण में अ -; रुधादि गण में धातु के बीचोबीच न; तनादि गण में उ ; क्र्यादि गण में - ना -; और चुरादि गण में - अय।

आधार ये हैं - १. भू भव, २. अद् अद्, ३. हु जुहु, ४. दिव् दीव्य, ५. सु सुनु, ६. तुद् तुद ७. रुध् रु-ण-ध् ८. तन् तनु - ९. क्री क्री-णा १०. चुर् चोरय।

(क) इन दस आधारों में चार अकारान्त हैं - १. भव ४. दीव्य ६. तुद १०. चोरय- इन्हें अ वर्ग में रखते हैं।

(ख) अन्य छह अंग अनकारान्त हैं, उभर-खाबर हैं - २. इ ए-इ

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

३. हु जुहु-जुहो ५. सु सुनु-सुनो ७. रुध् रुणध् - रुन्ध् ८. तन् तनु - तनो - ९. क्री क्रीणा क्री-णी- क्रीण्। इन्हें विषम वर्ग में रखते हैं।

(८५) इन आधारों पर लगने वाली विभक्तियों के दो स्वरूप हैं - परस्मैपद और आत्मनेपद।

(क) समतल और स्थिर अ - आधार में लगने वाली विभक्तियाँ ऊभर-खाबर विषम आधार में लगने वाली विभक्तियों से कहीं-कहीं अलग हैं। इसलिये उन्हें अलग-अलग बताना ठीक होगा।

विभक्तियाँ

१. अ-आधार के लिये

	परस्मैपद		लट्	आत्मनेपद		
	एकव०	द्विव०	बहुव०	एकव०	द्विव०	बहुव०
३	ति	तस्	न्ति	ते	इते	न्ते
२	सि	थस्	थ	से	इथे	ध्वे
१	मि	वस्	मस्	ए	वहे	महे
			लङ्			
३	त्	ताम्	न्	त	इताम्	न्त
२	स्	तम्	त	थास्	इथाम्	ध्वम्
१	म्	व	म	इ	वहि	महि
			लेट्			
३	अति अत्	अतस्	अन्	अते	ऐते	अन्ते
२	असि अस्	अथस्	अथ	असे	ऐथे	अध्वे
१	आनि आ	आव	आम	ऐ	आवहै	आमहै

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

लोट्

३	तु	ताम्	न्तु	ताम्	इताम्	न्ताम्
२	-	तम्	त	स्व	इथाम्	ध्वम्

वेद में लोट् के उत्तमपुरुष नहीं होते।

लिङ्

३	ईत्	ईताम्	ईयुस्	ईत	ईयाताम्	ईरन्
२	ईस्	ईतम्	ईत	ईथास्	ईयाथाम्	ईध्वम्
१	ईयम्	ईव	ईम	ईय	ईवहि	ईमहि

२. विषम आधार के लिये

लट्

३	ति	तस्	अन्ति	ते	आते	अते
२	सि	थस्	थ	से	आथे	ध्वे
१	मि	वस्	मस्	ए	वहे	महे

लङ्

३	त्	ताम्	अन्	त	आताम्	अत
२	स्	तम्	त	थास्	आथाम्	ध्वम्
१	अम्	व	म	इ	वहि	महि

लेट्

३	अति अत्	अतस्	अन्	अते अतै	ऐते	अन्त
२	असि अस्	अथस्	अथ	असे असै	ऐथे	अध्वै
१	आनि आ	आव	आम	ऐ	आवहै	आमहै

लोट्

३	तु	ताम्	अन्तु	ताम्	आताम्	अताम्

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

२	हि, धि	तम्	त	स्व	आथाम्	ध्वम्

वेद में लोट् के उत्तमपुरुष नहीं होते।

		लिङ्				
३	यात्	याताम्	युस्	ईत	ईयाताम्	ईरन्
२	यास्	यातम्	यात	ईथास्	ईयाथाम्	ईध्वम्
१	याम्	याव	याम	ईय	ईवहि	ईमहि

(ख) निम्नलिखित विभक्तियाँ सबल कहलाती हैं-

एकवचन लट् लङ् परस्मैपद

लेट् की सारी विभक्तियाँ

लोट् प्रथम पुरुष, एकवचन परस्मैपद

शेष विभक्तियाँ अबल कहलाती हैं।

लोट् मध्यमपुरुष बहुवचन पर विभक्ति त न केवल सबल है बल्कि यह तन थन भी हो जाती है। एकवचन वाली धि भी कभी-कभी सबल दीखती है।

वेद में मस् के साथ मसि भी है। अन् के साथ उस् भी है।

(ग) लेट् की सारी विभक्तियाँ सबल तो हैं ही, अति अत् इत्यादि के साथ आति आत् इत्यादि भी है। इसीलिये पाणिनि विना किसी विशिष्ट निर्देश के साथ कहते हैं— लेटोऽडाटौ। वास्तव में, अ आधार वाले धातुओं के लिये आति आत्, विषम आधार के लिये मुख्यत: अति अत्, कभी-कभी आति आत् भी। इस पर आगे भी कुछ प्रकाश डालेंगे।

आधार

(८६) अ-वर्ग

अ-विकरण लगने पर भ्वादि गण के धातुओं के अन्तिम स्वर गुण अवस्था में आ जाते हैं - भू भो भव, जि जे जय- नी ने नय—।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

ह्रस्व उपधा स्वर भी गुण हो जाते हैं- चित् चेत, बुध् बोध—

य - विकरण लगने पर दिवादि गण के धातुओं के स्वर ज्यों के त्यों रह जाते हैं। उदात्त भी धातु पर ही रहता है — दिव् दीव्य, नह् नह्य ।

उदात्त स्वर वाले -अ- विकरण के लगने पर तुदादि गण के धातुओं के स्वर भी ज्यों के त्यों रह जाते हैं — रिख् रिख, तुद् तुद । उदात्त दूसरे अक्षर पर है। धातु का अन्तिम ॠ इर् हो जाता है- कृ किर- गृ गिर।

वेद की पुरानी भाषा में चुरादि गण के धातु नहीं है। इनका विकास बहुत बाद में हुआ है।

(८७) व म से शुरु होने वाली विभक्तियों के पहले अ - आधार आ - हो जाता है— भव भवामि भवावः भवामः।

विभक्ति का अन्तिम स् विसर्ग बन जाता है — भवामस् = भवामः।

रूपावली

(८८) भू भव

लट्

३	भवति	भवतः	भवन्ति	भवते	भवेते	भवन्ते
२	भवसि	भवथः	भवथ	भवसे	भवेथे	भवध्वे
१	भवामि	भवावः	भवामः	भवे	भवावहे	भवामहे

लङ्

३	अभवत्	अभवताम्	अभवन्	अभवत	अभवेताम्	अभवन्त
२	अभवः	अभवतम्	अभवत	अभवथाः	अभवेथाम्	अभवध्वम्
१	अभवम्	अभवाव	अभवाम	अभवे	अभवावहि	अभवामहि

लेट्

३	भवाति भवात्	भवातः	भवान्	भवाते	भवैते	भवान्ते
२	भवासि भवाः	भवाथः	भवाथ	भवासे	भवैथे	भवाध्वे

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

१ भवानि भवा	भवाम	भवाम	भवै	भवावहै	भवामहै

लोट्

३ भवतु	भवताम्	भवन्तु	भवताम्	भवेताम्	भवन्ताम्
२ भव	भवतम्	भवत	भवस्व	भवेथाम्	भवध्वम्

लिङ्

३ भवेत्	भवेताम्	भवेयुः	भवेत	भवेयाताम्	भवेरन्
२ भवेः	भवेतम्	भवेत	भवेथाः	भवेयाथाम्	भवेध्वम्
१ भवेयम्	भवेव	भवेम	भवेय	भवेवहि	भवेमहि

(८९) दिवादि और तुदादि गण के धातु ठीक इसी ढंग से चलते हैं, इसलिये उन्हें यहाँ दिखाना आवश्यक नहीं।

(९०) अ-वर्ग के लिये लट् २ बहुव० में -थन नहीं होता, लेकिन एक उदाहरण वदथन है। लोट् २ एकव० में कोई विभक्ति नहीं होती, लेकिन कहीं-कहीं -तात् दिखायी देता है। लोट् २ बहुव० में एक बार भजतन और नह्यतन है। अथर्ववेद से लेट् ३ एकव० में अतै आने लगता है। २ एकव० में असै भी। ३ बहुव० में ब्राह्मण में अन्तै ही है। ब्राह्मण की भाषा ही लेट् के लिये सन्ध्याकाल भी है।

अ-वर्ग तो नियमित है, पर कुछ आधार अनियमित ढंग से बनते हैं।

भ्वादिगण

कुछ आधार -छ- विकरण से बनते हैं - गम् गछ, यु युछ-।

क्रम् क्राम-, गुह् गूह, ऊह् ओह, पा पिब स्था तिष्ठ, सद् सीद-, सच् सश्च -

इ इन्व, जि जिन्व, हि हिन्व, पी पिन्व दंश् दश, सञ्ज् सज।

दिवादि गण

स्पश् पश्य, व्यध् विध्य, धा धय, मा मय, वा वय, व्या व्यय, ह्वा

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

ह्वय, जॄ जीर्य, तॄ तीर्य तूर्य पॄ पूर्य, श्रम् श्राम्य, मद् माद्य, तम् ताम्य, जन् जाय।

तुदादि गण

कृत् कृन्त, तृप् तृम्प, पिश् पिंश, मुच् मुञ्च, लिप् लिम्प, लुप् लुम्प, विद् विंद, सिच् सिञ्च, तुद् तुन्द, दृह् दृह, शुभ् शुंभ

इष् इछ, ऋ ऋछ, प्रछ् पृछ, वस् उछ, व्रश्च वृश्च, भ्रज्ज् भृज्ज, तॄ तिर- तर—

भ्वादि गण में धातु पर उदात्त होता है, तुदादि गण में विकरण पर।

विषम-अंग

(९१) अदादि गण

अदादि गण के धातुओं में कोई विकरण नहीं लगता है। विभक्तियाँ सीधे जोड़ दी जाती हैं। लेकिन सबल विभक्तियों के पहले धातु स्वर में गुण हो जाता है।

इ पर० सबल आधार ए- अबल आधार इ-

ब्रू आ० सबल आधार ब्रो- अबल आधार ब्रू-

लट्

३	एति	इतः	यन्ति	ब्रूते	ब्रुवाते	ब्रुवते
२	एषि	इथः	इथ, इथन	ब्रूषे	ब्रुवाथे	ब्रूध्वे
१	एमि	इवः	इमः इमसि	ब्रुवे	ब्रूवहे	ब्रूमहे

लङ्

३	ऐत्	ऐताम्	आयन्	अब्रूत	अब्रुवाताम्	अब्रुवत
२	ऐः	ऐतम्	ऐत	अब्रूथाः	अब्रुवाथाम्	अब्रूध्वम्
१	आयम्	ऐव	ऐम	अब्रुवि	अब्रूवहि	अब्रूमहि

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

लेट्

३	अयति	अयत् अयतः	अयन्	ब्रवते	ब्रवैते	ब्रवन्त
२	अयसि	अयः अयथः	अयथ	ब्रवसे	ब्रवैथे	ब्रवध्वे
१	अयानि	अया अयाव	अयाम	ब्रवै	ब्रवावहै	ब्रवामहै

लोट्

३	एतु	इताम्	यन्तु	ब्रूताम्	ब्रुवाताम्	ब्रुवताम्
२	इहि	इतम्	इत	ब्रूष्व	ब्रुवाथाम्	ब्रूध्वम्

लिङ्

३	इयात्	इयाताम्	इयुः	ब्रुवीत	ब्रुवीयाताम्	ब्रुवीरन्
२	इयाः	इयातम्	इयात	ब्रुवीथाः	ब्रवीयाथाम्	ब्रुवीध्वम्
१	इयाम्	इयाव	इयाम	ब्रुवीय	ब्रुवीवहि	ब्रुवीमहि

कुछ आधार अनियमित ढंग से बनते हैं। अन्तःपद सन्धि की जटिलता तो है ही।

सबल-व्यंजनादि विभक्तियों के पहले क्ष्णु, यु, नु स्तु में गुण के बदले वृद्धि होती है - स्तु स्तौति अस्तौत्। ब्राह्मण में रु, सु, स्कु, धातु भी सम्मिलित हो जाते हैं।

सबल विभक्तियों के पहले मृज् में वृद्धि होती है - मृज् मार्ज्मि लेकिन मृज्मः, मार्ष्टि लेकिन मृष्टः।

शी का आधार शे - है, फिर प्रथमपु० बहुव लट् लङ् लोट् में एक र्-घुस जाता है - शेते शयाते शेरते लङ् अशेरत लोट् शेरताम् । अथर्व० लोट् ३ एकव० आ० शयाम् = शेताम्, शये = शेते।

दुह् लङ् ३ बहुव० अदुह्रन् अदुहन् दुहुः। एकवचन में अधोक् के साथ अदुहत् भी। लिङ् ३ एकव० दुहीयत् = दुह्यात्, बहुव० दुहीयन् = दुह्युः। आ लट् बहुव० दुह्रे दुह्रते = दुहते। लोट् ३ एकव० दुहाम् बहुव० दुह्राम् दुह्रताम्।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

लोट् २ बहुव० विभक्ति त (अबल) के साथ सबल त, तन, थन भी। इ एत एतन, ब्रू ब्रवीतन, स्तु स्तोत, हन् हन्तन। ब्रू अब्रवीतन।

वश् का सम्प्रसारण होता है अबल रूपों में - वष्टि उष्टः उशन्ति। वक्षि उष्ठः उष्ठ। वश्मि उश्वः उश्मः उश्मसि, श्मसि भी एकवार।

अस् का अबल आधार स् - : अस्ति स्तः सन्ति, असि स्थः स्थ, अस्मि स्वः स्मः स्मसि। लोट् २ एकव० एधि। लङ् एकवचन ३ आसीत् २ आसीः १ आसम्। लिङ् २ बहुव० स्यात स्यातन।

हन् लट् हन्ति हतः घ्नन्ति, लङ् अघ्नन्, लोट् घ्नन्तु, २ एकव० जहि।

अन् रुद् वम् स्वप् श्वस् व्यंजनादि विभक्ति के पहले इ लगा लेता है- अनिति रोदिति लङ् में अरोदीत् अरोदीः।

शास् लट् शास्ति शास्तः शासति। ३ बहुव० लङ् अशासत लोट् शासतु।

ईश् लट् २ एकव० आ० ईक्षे (ईश् + से), संस्कृत में ईशिषे ब्रू लट् ब्रवीति ब्रूतः ब्रुवन्ति। लङ् अब्रवीत्। पा लङ् ३ बहुव० अपुः। त्विष् अत्विषुः ब्रू + ते = ब्रुवे

पाणिनि लेट् विभक्ति के पहले सामान्य रूप से अट् आट् बताते हैं। वास्तव में, आट् भ्वादि दिवादि तुदादि गण के धातुओं के लिये है — भवाति दीव्याति तुदाति। अन्य गण के धातुओं के लिये तो अट् ही है — अयति असति जुहवति सुनवति रुणधति इत्यादि। लेकिन कभी-कभी आट् भी देखा जाता है - इ लेट् २ एकव० अयाः (अयः की जगह), अस् ३ एकव० असात् (असत् की जगह), हु लेट् ३ एकव० जुहवाति (जुहवति की जगह)। हन् लेट् २ बहुव० हनाथ, ब्रू २ द्विव० ब्रवाथः इत्यादि।

(१२) जुहोत्यादि गण

जुहोत्यादि गण के धातु विभक्तियों के लगने के पहले दुहरा जाते हैं; कहते हैं, उनका अभ्यास होता है। अभ्यास के सामान्य नियम ये हैं —

१. धातु का पहला अक्षर ही दुहराता है - बुध् बुबुध् जन् जजन्।

२. महाप्राण अल्पप्राण हो जाता है - भिद् बिभिद्, फल् पफल्।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

३. दीर्घस्वर ह्रस्व हो जाता है - भी बिभी, धा दधा, दा ददा, राध् रराध्।

४. कवर्ग चवर्ग में बदल जाता है - गम् जगम् खन् चखन् घस् जघस्। ह ज में बदल जाता है - हु जुहु।

५. यदि पहले अक्षर पर संयुक्त व्यंजन होता है तो उसका पहला व्यंजन ही दुहराता है - क्रम् चक्रम् ग्रह् जग्रह्। लेकिन यदि पहला अक्षर श् ष् स् से शुरु हो तो दूसरा वर्ण दुहराता है — स्तु तुष्टु, स्था तस्था।

जुहोत्यादि गण के लिये विशेष नियम यह है कि ऋ ॠ इ से दुहराता है - भृ बिभृ, पृ पिपृ।

कुछ विशिष्ट आधार भी हैं - मा मिमा (सबल), मिमी (अबल) स्वर के पहले मिम्। रा ररा ररी, शा शिशा शिशी। हा जहा जही, दा ददा दद्, धा दधा दध्, व्यच् विविच्, ह्वर् जुहुर्। सच् सश्च्, हस् जहस् जक्ष्।

सबल विभक्तियों के पहले धातुस्वर में गुण होता है - भृ बिभृ बिभर्ति बिभर्षि बिभर्मि, लेकिन बिभृतः इत्यादि।

लट् प्रथम पुरुष बहुवचन में विभक्ति अति है (अन्ति नहीं)। लङ् में सबल उस् है (अन् नहीं)।

रूपावली

भृ बिभृ - (अबल) बिभर् (सबल)

लट्

३	बिभर्ति	बिभृतः	बिभ्रति	बिभृते	बिभ्राते	बिभ्रते
२	बिभर्षि	बिभृथः	बिभृथ	बिभृषे	बिभ्राथे	बिभृध्वे
१	बिभर्मि	बिभृवः	बिभृमः	बिभ्रे	बिभृवहे	बिभृमहे

लङ्

३	अबिभः	अबिभृताम्	अबिभरुः	अबिभृत	अबिभ्राताम्	अबिभ्रत
२	अबिभः	अबिभृतम्	अबिभृत	अबिभृथाः	अबिभ्राथाम्	अबिभृध्वम्

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

१ अबिभरम्	अबिभृव	अबिभृम	अबिभ्रि	अबिभृवहि	अबिभृमहि

३ बहुव: अबिभरन् भी, २ अबिभृतन भी।

लेट्

३ बिभरत्	बिभरत:	बिभरन्	बिभरते	बिभरैते	बिभरन्त
२ बिभर:	बिभरथ:	बिभरथ	बिभरसे	बिभरैथे	बिभरध्वे
१ बिभराणि	बिभराव	बिभराम	बिभरै	बिभरावहै	बिभरामहै

लोट्

३ बिभर्तु	बिभृताम्	बिभ्रतु	बिभृताम्	बिभ्राताम्	बिभ्रताम्
२ बिभृहि	बिभृतम्	बिभृत	बिभृष्व	बिभ्राथाम्	बिभृध्वम्

लिङ्

३ बिभृयात्	बिभृयाताम्	बिभृयु:	बिभ्रीत	बिभ्रीयाताम्	बिभ्रीरन्
२ बिभृया:	बिभृयातम्	बिभृयात	बिभ्रीथा:	बिभ्रीयाथाम्	बिभ्रीध्वम्
१ बिभृयाम्	बिभृयाव	बिभृयाम	बिभ्रीय	बिभ्रीवहि	बिभ्रीमहि

लोट् २ एकव० पर० यु युयोधि, शा शिशाधि शिशीहि द्विव० युयुतम् युयोतम्। दा लोट् २ बहुव० ददात ददातन, धा दधात दधातन, यु युयोत युयोतन हु जुहोत जुहोतन, हा जहातन। लोट् २ बहुव० धत्त दधात।

पा पिब स्था तिष्ठ, हन् जिघ्न, घ्रा जिघ्र कभी इसी गण में थे।

(९३) स्वादि गण

स्वादि गण के धातु -नु- से आधार बनाते हैं - सु सुनु, कृ कणु- सबल विभक्तियों के पहले -नो- हो जाता है -सुनो- कृणो सुनोति सुनोषि सुनोमि, लेकिन सुनुत: सुन्वन्ति इत्यादि।

व म से शुरु होने वाली विभक्तियों के पहले नु का उकार जा भी सकता है - सुनुव:, सुन्व: सुनुम: सुन्म: लेकिन व्यंजनान्त धातुओं में ऐसा नहीं होता - शक् शक्नु - शक्नुव: शक्नुम:।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

रूपावली

सु सुनु (अबल) सुनो - (सबल)

लट्

३	सुनोति	सुनुतः	सुन्वन्ति	सुनुते	सुन्वाते	सुन्वते
२	सुनोषि	सुनुथः	सुनुथ	सुनुषे	सुन्वाथे	सुनुध्वे
१	सुनोमि	सुनुव	सुनुमः	सुन्वे	सुनुवहे	सुनुमहे
		सुन्वः	सुन्मः		सुन्वहे	सुन्महे

लङ्

३	असुनोत्	असुनुताम्	असुन्वन्	असुनुत	असुन्वाताम्	असुन्वत
२	असुनोः	असुनुतम्	असुनुत	असुनुथाः	असुन्वाथाम्	असुनुध्वम्
१	असुनवम्	असुनुव	असुनुम	असुन्वि	असुनुवहि	असुनुमहि
		असुन्व	असुन्म		असुन्वहि	असुन्महि

लेट्

३	सुनवति	सुनवत्	सुनवतः	सुनवन्	सुनवते	सुनवैते	सुनवन्त
२	सुनवसि	सुनवः	सुनवथः	सुनवथ	सुनवसे	सुनवैथे	सुनवध्वे
१	सुनवानि	सुनवा	सुनवाव	सुनवाम	सुनवै	सुनवावहै	सुनवामहै

लोट्

३	सुनोतु	सुनुताम्	सुन्वन्तु	सुनुताम्	सुन्वाताम्	सुन्वताम्
२	सुनु	सुनुतम्	सुनुत	सुनुष्व	सुन्वाथाम्	सुनुध्वम्

लिङ्

३	सुनुयात्	सुनुयाताम्	सुनुयुः	सुन्वीत	सुन्वीयाताम्	सुन्वीरन्
२	सुनुयाः	सुनुयातम्	सुनुयात	सुन्वीथाः	सुन्वीयाथाम्	सुन्वीध्वम्
१	सुनुयाम्	सुनुयाव	सुनुयाम	सुन्वीय	सुन्वीवहि	सुन्वीमहि

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

सन्धि की विशिष्टता पर ध्यान दें- सुनु+अन्ति=सुन्वन्ति, लेकिन शक्नु+ अन्ति = शक्नुवन्ति।

लोट् मध्यमपु० एकवचन - हि शक्नु - आधार के बाद रह जाता है, सुनु के बाद नहीं - शक्नुहि, लेकिन सुनु। वेद में हि की जगह धि भी है - श्रु शृणु शृणुधि। शृणुहि भी है, पर ब्राह्मण से शृणु ही आने लगता है। शृणुतात् भी आने लगता है।

इ इनु इन्वन्ति के द्वारा एकवचन इन्वति भी आने लगता है। उसी प्रकार, ऋ से ऋण्वति, जि जिन्वति, पि पिन्वति, हि हिन्वति। लट् आ० ३ बहुव० में इन्विरे पिन्विरे आदि रूप चल पड़े।

कृ से लोट् २ द्विव० में कृणुतम् के साथ कृणोतम् भी, बहुव० कृणुत के साथ कृणोत कृणोतन भी। इसी प्रकार, हि हिनुतम् के साथ हिनोतम्, शृणुत की जगह शृणोत शृणोतन भी, हिनुत के साथ हिनोत हिनोतन भी। आ० ३ बहुव० शृण्वते की जगह शृण्विरे भी है।

कृ कृणु - कृणो - की जगह ऋग्वेद दशम मण्डल से करो - आधार भी आने लगता है- करोति इत्यादि। अथर्ववेद से अबल आधार कुरु भी आने लगता है। ब्राह्मण में आधार करो - कुरु - ही है। य् व् म् से शुरु होने वाली विभक्ति के लिये आधार कुर् है - कुर्वः कुर्मः कुर्यात् इत्यादि।

(९४) रुधादि गण

रुधादि गण में, व्यंजनान्त धातु के बीचोबीच -न- डाला जाता है — रुध् रु-ण-ध्, युज् यु-न-ज्, भुज् भु-न-ज्। अबल रूपों में केवल न् रह जाता है - रुध् रुन्ध् युज् युञ्ज्, भुज् भुञ्ज्।

अन्तःपद व्यञ्जन संधि की जटिलता के कारण इसके रूप कठिन होते हैं - रुणध् + ति = रुणद्-धि, रु-न्-ध् + तस् = रुन्द् - धः, इत्यादि।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

रूपावली

लट्

३	रुणद्धि	रुन्द्धः	रुन्धन्ति	रुन्द्धे	रुन्धाते	रुन्धते
२	रुणत्सि	रुन्द्धः	रुन्द्ध	रुन्त्से	रुन्धाथे	रुन्द्ध्वे
१	रुणध्मि	रुन्ध्वः	रुन्ध्मः	रुन्धे	रुन्ध्वहे	रुन्ध्महे

लङ्

३	अरुणत्	अरुन्द्धाम्	अरुन्धन्	अरुन्द्ध	अरुन्धाताम्	अरुन्धत
२	अरुणत्	अरुन्द्धम्	अरुन्द्ध	अरुन्द्धाः	अरुन्धाथाम्	अरुन्द्ध्वम्
१	अरुणधम्	अरुन्ध्व	अरुन्ध्म	अरुन्धि	अरुन्ध्वहि	अरुन्ध्महि

लेट्

३	रुणधति रुणधत्	रुणधतः	रुणधन्	रुणधते	रुणधैते	रुणधन्त
२	रुणधसि	रुणधथः	रुणधथ	रुणधसे	रुणधैथे	रुणधध्वे
१	रुणधानि	रुणधाव	रुणधाम	रुणधै	रुणधावहै	रुणधामहै

लोट्

३	रुणद्धु	रुन्द्धाम्	रुन्धन्तु	रुन्द्धाम्	रुन्धाताम्	रुन्धताम्
२	रुन्द्धि	रुन्द्धम्	रुन्द्ध	रुन्त्स्व	रुन्धाथाम्	रुन्द्ध्वम्

लिङ्

३	रुन्ध्यात्	रुन्ध्याताम्	रुन्ध्युः	रुन्धीत	रुन्धीयाताम्	रुन्धीरन्
२	रुन्ध्याः	रुन्ध्यातम्	रुन्ध्यात	रुन्धीथाः	रुन्धीयाथाम्	रुन्धीध्वम्।
१	रुन्ध्याम्	रुन्ध्याव	रुन्ध्याम	रुन्धीय	रुन्धीवहि	रुन्धीमहि।

अञ्ज् सबल आधार अनज् अबल अञ्ज्, भञ्ज् भनज् भञ्ज्, हिंस् हिनस् हिंस्।

तृह् तृणह् तृंह् - लट् ३ एकव० तृणेह् + ति = तृणेढ् + ढि तृणेढि।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

(९५) तनादि गण

तनादि गण में कुल चार धातु हैं - तन् मन् वन् और सन्। इनके सबल आधार क्रमशः तनो - मनो - वनो - और सनो - तथा अबल आधार तनु - मनु - वनु और सनु - हैं। व म वाली विभक्तियों के पहले उ हट भी जाता है।

रूपावली

लट्

३ तनोति	तनुतः	तन्वन्ति	तनुते	तन्वाते	तन्वते
२ तनोषि	तनुथः	तनुथ	तनुषे	तन्वाथे	तनुध्वे
१ तनोमि	तनुवः	तनुमः	तन्वे	तनुवहे	तनुमहे
	तन्वः	तन्मः		तन्वहे	तन्महे

लङ्

३ अतनोत्	अतनुताम्	अतन्वन्	अतनुत	अतन्वाताम्	अतन्वत
२ अतनोः	अतनुतम्	अतनुत	अतनुथाः	अतन्वाथाम्	अतनुध्वम्
१ अतनवम्	अतनुव	अतनुम	अतन्वि	अतनुवहि	अतनुमहि
	अतन्व	अतन्म		अतन्वहि	अतन्महि

लेट्

३ तनवति	तनवत्	तनवतः	तनवन्	तनवते	तनवैते	तनवन्त
२ तनवसि	तनवः	तनवथः	तनवथ	तनवसे	तनवैथे	तनवध्वे
१ तनवानि		तनवाव	तनवाम	तनवै	तनवावहै	तनवामहै

लोट्

३ तनोतु	तनुताम्	तन्वन्तु	तनुताम्	तन्वातम्	तन्वातम्
२ तनु	तनुतम्	तनुत	तनुष्व	तन्वाथाम्	तनुध्वम्

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

लिङ्

३ तनुयात्	तनुयाताम्	तनुयुः	तन्वीत	तन्वीयाताम्	तन्वीरन्
२ तनुयाः	तनुयातम्	तनुयात	तन्वीथाः	तन्वीयाथामम्	तन्वीध्वम्
१ तनुयाम्	तनुयाव	तनुयाम	तन्वीय	तन्वीवहि	तन्वीमाहि

ऋग्वेद के दशम मण्डल से स्वादिगण का कृ इसी गण में सम्मिलित होने लगा। सबल आधार करो - आया। अथर्ववेद से अबल आधार कुरु - तथा कुर् भी आने लगा।

सबल रूप लट् एकवचन ३ करोति २ करोषि १ करोमि लङ् ३ अकरोत् अकरोः १ अकरवम् लोट् ३ करोतु। अबल रूप - लट् ३ कुर्वन्ति। १ कुर्वः कुर्मः इत्यादि।

संस्कृत भाषा के इतिहास में तनस् (सन्तान) से तन् (फैलना) धातु की कल्पना हुई, क्योंकि सन्तान से ही वंश फैलता है। इस तन् को पहले ओ से फैलाया तनोति तनोषि तनोमि। तनोति के - नो - को लेकर सु आदि धातुओं ने सुनोति सुनोषि सुनोमि आदि रूपों को जन्म दिया। आ से फैले हुए तनाति आदि रूप तो नहीं मिलते, पर क्रीणाति क्रीणामि आदि रूपों में इसी की झलक है। तनति के-न-से युज् युनक्ति आदि रूपों का जन्म हुआ। जिस धातु ने तनादि, स्वादि, रूधादि और क्र्यादि गणों को जन्म दिया वही स्वयं चार-पाँच धातुओं में सिमटकर रह गया।

(९६) क्र्यादिगण

इस गण में धातु के बाद ना लगता है - क्री क्री-णा। व्यंजनादि अबल विभक्तियों के पहले क्री-णी-तथा स्वरादि के पहले क्रीण् - होता है।

रूपावली

ल

३ क्रीणाति	क्रीणीतः	क्रीणन्ति	क्रीणीते	क्रीणाते	क्रीणते
२ क्रीणासि	क्रीणीथः	क्रीणीथ	क्रीणीषे	क्रीणाथे	क्रीणीध्वे

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

१ क्रीणामि	क्रीणीवः	क्रीणीमः	क्रीणे	क्रीणीवहे	क्रीणीमहे

लङ्

३ अक्रीणात्	अक्रीणीताम्	अक्रीणन्	अक्रीणीत	अक्रीणाताम्	अक्रीणत
२ अक्रीणाः	अक्रीणीतम्	अक्रीणीत	अक्रीणीथाः	अक्रीणाथाम्	अक्रीणीध्वम्
१ अक्रीणाम्	अक्रीणीव	अक्रीणीम	अक्रीणि	अक्रीणीवहि	अकीणीमहि

लेट्

३ क्रीणातिक्रीणात्	क्रीणातः	क्रीणान्	क्रीणाते	क्रीणैते	क्रीणान्त
२ क्रीणासिक्रीणाः	क्रीणाथः	क्रीणाथ	क्रीणासे	क्रीणैथे	क्रीणाध्वै
१ क्रीणानि	क्राणाव	क्रीणाम	क्रीणै	क्रीणावहै	क्रीणामहै

लोट्

३ क्रीणातु	क्रीणीताम्	क्रीणन्तु	क्रीणीताम्	क्रीणाताम्	क्रीणताम्
२ क्रीणीहि	क्रीणीतम्	क्रीणीत्	क्रीणीष्व	क्रीणाथाम्	क्रीणीध्वम्

लिङ्

३ क्रीणीयात्	क्रीणीयाताम्	क्रीणीयुः	क्रीणीत	क्रीणीयाताम्	क्रीणीरन्
२ क्रीणीयाः	क्रीणीयातम्	क्रीणीयात	क्रीणीथाः	क्रीणीयाथाम्	क्रीणीध्वम्
१ क्रीणीयाम्	क्रीणीयाव	क्रीणीयाम	क्रीणीय	क्रीणीवहि	क्रीणीमहि

जी जिना-जिनी-जिन्-, जू जुना - जुनी-जुन् पू पुना-पुनी-पुन् ।

ग्रभ् ग्रह् गृभ्णा - गृभ्णी गृभ्ण्, गृह्णा-गृह्णी-गृह्ण् ज्ञा जाना - जानी - जान्, बन्ध् बध्ना-बध्नी - बध्न् - मन्थ् मथ्ना - मथ्नी - मथ्न् - स्कंभ् स्कभ्ना - स्कभ्नी स्कभ्न्, स्तंभ् स्तभ्ना - स्तभ्नी - स्तभ्न् - अश् अश्ना- अश्नी - अश्न् -

ज्ञा जाना जानी - जान्

पृ पृणा-पृणी - प्रीण् तथा पृण भी

मृ मृणा-मृणी - मृण् तथा मृण - भी

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अश्, ग्रह्, बन्ध्, स्तम्भ् के लोट् मध्यम पु० एकवचन रूप हैं- अशान गृहाण बधान स्तभान।

ज्ञा धातु का मौलिक रूप जान् था, जिसे आ से आगे बढ़ा कर जानाति आदि रूप बने। ज स्पृष्ट संघर्षी द्ज था, इसलिये प्राचीन फारसी में यह दान् के रूप में विकसित हुआ। आधुनिक फारसी में जानामि की जगह मीदानम् है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

लिट् लकार

(९७) लिट् का आधार धातु के दुहराने से बनता है। अभ्यास के सामान्य नियम बताये जा चुके हैं।

लिट् के लिये विशेष नियम यह है कि पहले अक्षर पर ऋ ॠ ऌ की जगह अ या आ होता है —

कृ चकृ - तृ ततृ-, क्लृप् चाक्लृप् ।

दुहराने वाले स्वर की संधि हो जाती है —

अस् अ-अस् = आस्, अन् अ-अन् = आन्, आप् अ-आप् = आप्, ऋ अ-अर् = आर्।

एकवचन वाले रूपों में जब धातु स्वर गुण हो जाता है तो पूर्ववर्ती इ के आगे य् तथा उ के आगे व् चला आता है - इ इ-इ-थ इ-ए-थ = इयेथ, इष् इ-इष्-अ इ-एष्-अ = इयेष, उच् उ-उच्-अ उ-ओच्-अ = उवोच।

अन्य रूपों में तो दीर्घ सन्धि हो जाती है। - इष् इ-इष्-उस् = ईषुः, उच् उ-उच् इ से = ऊचिषे।

य व वाले कुछ धातुओं का पहले अक्षर पर सम्प्रसारण हो जाता है - त्यज् तित्यज्, यज् इयज् व्यच् विव्यच्, स्यन्द् सिष्यन्द्, वच् उवच्, वद् उवद् वप् उवप्, वह् उवह्, स्वप् सुष्वप्। कुछ ऐसे धातुओं में सम्प्रसारण नहीं भी होता है — वच् ववच्, यम् ययम्, वन् ववन्, वस् ववस्।

कुछ आधार पर ह्रस्व की जगह दीर्घ स्वर आजाते हैं - धृ दधर्

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

दाधार, नम् नानाम, कन् चाकन्, सह् सासह्, सु सूसु, गृ जागृ, धी दीधी, क्लृप् चाक्लृप्, तुज् तूतुज्, इत्यादि।

(९८) दुहराये हुए धातुओं में निम्नलिखित पर० और आ० विभक्तियाँ लगती हैं —

३	अ	अतुस्	उस्	ए	आते	इरे
२	थ	अथुस्	अ	से	आथे	ध्वे
१	अ	व	म	ए	वहे	महे

पर० एकव० विभक्तियाँ सबल हैं, शेष अबल।

व्यंजनादि विभक्तियों के पहले व्यंजनान्त धातुओं के बाद प्रायः इ आ जाता है - वच् उवोचिथ, ऊचिम।

कहीं-कहीं इरे का इ हट जाता है- क्लृप् चाक्लृप्रे, विद् विविद्रे।

(९९) स्वरादि विभक्तियों के पहले इ ई तो य् में बदलता है लेकिन संयुक्त व्यंजनों के बाद वाला इय् में — भी बिभी+उस् = बिभ्युः, श्रि शिश्रि + उस् = शिश्रियुः। उ ऊ सब हालत में उव् में ही बदलता है- यु युयु + ए = युयुवे, श्रु श्रु + ए = शुश्रुवे। ऋ तो र् में बदलता है, लेकिन ॠ इर् में — कृ चकृ + ए = चक्रे, तृ तितृ + उस् = तितिरुः, स्तृ तिस्तिरे।

(१००) सबल अंग

ह्रस्व स्वर वाले व्यंजनान्त धातु सबल रूपों में गुण स्वर धारण करते हैं - दिश् दिदेश, उच् उवोच, कृत् चकर्त। यदि अन्त में संयुक्त व्यंजन हैं तो नहीं बदलते - जिन्व् जिजिन्व।

प्रथम पुरुष एकव० में अन्तिम स्वर वृद्धि धारण करते हैं - नी निनाय, श्रु शुश्राव, कृ चकार। मध्यवर्ती अ लेकिन आ हो जाता है, यदि आगे एक ही व्यंजन हो - हन् जघान, गम् जगाम, जन् जजान। लेकिन तक्ष् ततक्ष। मध्यमपु० में उनका गुण होता है- इ इयेथ, उच् उवोचिथ, तुद् तुतोदिथ, कृ चकर्थ, नी निनेथ, स्तु तुष्टोथ। उत्तमपु० में संस्कृत में गुण

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

वृद्धि या अ आ दोनों होता है - नी निनाय निनय, गम् जगाम जगम, लेकिन वेद में गुण या अ ही, दोनों नहीं - नी निनय, कृ चकर, गम् जगम।

आकारान्त धातु का प्रथमपु० एकव० रूप औ होता है — धा दधौ, दा ददौ, लेकिन प्रा पप्रा पप्रौ दोनों।

(१०१) अबल अंग

इ ई, उ ऊ तथा ऋ वाले धातु अबल रूपों में ज्यों के त्यों रह जाते हैं - युज् युयुज्म, विद् विविदे, कृ चकृम।

स्वरादि विभक्तियों के पहले, एक व्यंजन के बाद वाला इ ई तो य् में और ऋ र् में बदलता है, लेकिन संयुक्त व्यंजन के बाद रहने पर इ ई इय् में ऋ इर् में बदलता है - जि जिग्युः भी बिभ्युः, कृ चक्रुः, लेकिन श्रि शिश्रिये। उ ऊ हमेशा उव् में और ॠ हमेशा इर् में बदलता है - यु युयुवे, श्रु शुश्रुवे, तृ तितिरुः स्तृ तिस्तिरे।

कुछ मध्यवर्ती अ वाले धातु दुहराते तो नहीं हैं पर अबल रूपों में अ को ए में बदल कर सिकुड़ जाते हैं - तप् तेपुः, पच् पेचुः। शक् शेकुः, लभ् लेभिरे। दभ्, नम्, पत्, यम्, शप्, रभ्, सप् ऐसे धातु हैं। अथर्ववेद में तन् और सच् आ जाते हैं - तेने, सेचुः।

निम्नलिखित धातुओं का मध्यवर्ती अ लुप्त हो जाता है खन् चख्नुः, गम् जग्मुः, घस् जक्षुः हन् जघ्नुः, जन् जज्ञे जज्ञिरे, तन् तत्नुः,पन् पप्नुः मन् मम्ने, वन् वव्नुः।

निम्नलिखित धातुओं में सम्प्रसारण होता है — यज् इ-इज् = ईज्, वच् उ-उच् = ऊच्, वद् उ-उद् = ऊद्, वप् उ-उप् = ऊप्, वस् उ-उस् = ऊष् वह् उ-उह् = ऊह्, स्वप् सुष्वप् सुषुप्, ग्रभ् जगृभ् ग्रह् जगृह्। क्रन्द् तंस् आदि का अनुनासिक लुप्त हो जाता है - चक्रद ततस।

आकारान्त धातु का आ लुप्त हो जाता है - धा दधिम दधुः ।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

१०२ रूपावली

तुद् सबल आधार तुतोद् अबल आधार तुतुद्

३	तुतोद	तुतुदतुः	तुतुदुः	तुतुदे	तुतुदाते	तुतुदिरे
२	तुतोदिथ	तुतुदथुः	तुतुद	ततुत्से	तुतुदाथे	तुतुद्ध्वे
१	तुतोद	तुतुद्व	तुतुद्म	तुतुदे	तुतुद्वहे	तुतुद्महे

कृ चकार् चकर् चकृ

३	चकार	चक्रतुः	चक्रुः	चक्रे	चक्राते	चक्रिरे
२	चकर्थ	चक्रथुः	चक्र	चकृषे	चक्राथे	चकृध्वे
१	चकर	चकृव	चकृम	चक्रे	चकृवहे	चकृमहे

धा दधा दध् दधि

३	दधौ	दधतुः	दधुः	दधे	दधाते	दधिरे
२	दधाथ	दधथुः	दध	दधिषे	दधाथे	दधिध्वे
१	दधौ	दधिव	दधिम	दधे	दधिवहे	दधिमहे

नी निनै-निने-निनी

३	निनाय	निन्यतुः	निन्युः	निन्ये	निन्याते	निनीरे
२	निनेथ	निन्यथुः	निन्य	निनीषे	निन्याथे	निनीध्वे
१	निनय	निनीव	निनीम	निन्ये	निनीवहे	निनीमहे

स्तु तुष्टौ-तुष्टो-तुष्टु

३	तुष्टाव	तुष्टुवतुः	तुष्टुवुः	तुष्टुवे	तुष्टुवाते	तुष्टुविरे
२	तुष्टोथ	तुष्टुवथुः	तुष्टुव	तुष्टुषे	तुष्टुवाथे	तुष्टुध्वे
१	तुष्टव	तुष्टुव	तुष्टुम	तुष्टुवे	तुष्टुवहे	तुष्टुमहे

तप् तताप् ततप्, तेप्

३	तताप	तेपतुः	तेपुः	तेपे	तेपाते	तेपिरे

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

२ ततप्थ	तेपथुः	तेप	तेपिषे	तेपाथे	तेपिध्वे
१ ततप	तेपिव	तेपिम	तेपे	तेपिवहे	तेपिमहे

वच् उवाच् उवच् ऊच्

३ उवाच	ऊचतुः	ऊचुः	ऊचे	ऊचाते	ऊचिरे
२ उवक्थ	ऊचथुः	ऊच	ऊचिषे	ऊचाथे	ऊचिध्वे
१ उवच	ऊचिव	ऊचिम	ऊचे	ऊचिवहे	ऊचिमहे

गम् जगाम् जगम् जग्म्

३ जगाम	जग्मतुः	जग्मुः	जग्मे	जग्माते	जग्मिरे
२ जगन्थ	जग्मथुः	जग्म	जग्मिषे	जग्माथे	जग्मिध्वे
१ जगम	जग्मिव	जग्मिम	जग्मे	जग्मिवहे	जग्मिमहे
	जगन्व	जगन्म		जगन्वहे	जगन्महे

(१०३) अनियमित रूप

भज् का सबल रूप बभाज तो ठीक है, पर अबल रूपों में यह भी सिकुड़ गया है - भेजतुः भेजुः।

बन्ध् का अनुनासिक भी लुप्त हो गया है - बबन्ध, लेकिन बेधुः (अथर्व०)।

यम् से ययाम, येमे

वन् से ववान, वव्ने

वस् से वावसे

विद् दुहराता नहीं - ३ वेद विदतुः विदुः २ वेत्थ विदथुः वेद १ वेद विद्व विद्म। ऐसे कुछ और भी धातुरूप हैं- तक्ष् तक्षथुः, स्कंभ् स्कंभथुः, चित् चेततुः यम् यमतुः यमुः, निन्द् निन्दिम, अर्ह् अर्हिरे।

कुछ धातुओं में कुत्व हो जाता है - चि चिकाय, जि जिगाय, चित् चिकेत, हन् जघान जघ्ने।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

ह्व के बिगड़े हुए रूप - ३ जभार - जभ्रुः २ जभर्थ, इत्यादि भृ धातु की शंका उत्पन्न कर देते हैं। वास्तव में जह्वार ही विगड़ कर जभार हो गया है। लेकिन बभ्रे में तो भृ ही मालूम पड़ता है।

३ आह आहतुः आहुः २ आत्थ आहथुः ये पाँच रूप पुराने हैं — आ (भूतकाल)+ह (कहना) = आह।

कुछ धातु दुहराने की जगह आन् - से जुट जाते हैं - अंश् आनंश् आनश्, अञ्ज् आनञ्ज् आनज्, अर्च् आनर्च् आनृच्।

भू का आधार है बभू - और स्वरादि विभक्ति के पहले व् आ जाता है - ३ बभूव बभूवतुः बभूवुः २ बभूविथ बभूथ बभूवथुः बभूव, बभूव बभूविव बभूविम।

सू से ससूव, च्यु से चिच्यु चुच्यु, द्युत् से दिद्युत्।

(१०४) लिट् के इन्हीं दुहराये हुए आधारों पर वेद की प्राचीन भाषा में लङ्, लेट्, लोट्, लिङ् और अशीर्लिङ् की विभक्तियाँ लगती हैं।

(१०५) लिट् + लङ्

पूरे वेद में इन रूपों की संख्या लगभग साठ है। भू के तो एक भी रूप नहीं मिलते, लेकिन यदि बनाकर दिखाये जायें तो इस प्रकार होंगे -

आधार बभू-बभूव् पर०			
३	अ-बभू-त्	अ-बभू-ताम्	अ-बभू-वुः
२	अबभूः	अ-बभू-तम्	अ-बभू-त
१	अ-बभू-वम्	अवभूव	अ-बभू-म

गम् आधार जगम् जग्म्

पर०			
३	अजगन्	अजग्मिताम्	अजग्मुः
२	अजगन्	अजग्मितम्	अजग्मित
१	अजगमम्	अजग्मिव	अजग्मिम

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

केवल २.३ एकव० अजगन् रूप मिलता है।

	आ०		
३	अजग्मित	अजग्माताम्	अजग्मिरन्
२	अजग्मिथाः	अजग्माथाम्	अजग्मिध्वम्
१	अजग्मि	अजग्मिवहि	अजग्मिमहि

केवल ३ बहुव० अजग्मिरन् रूप मिलता है।

इ (जाना) के लिट् + लङ् वाले केवल एकवचन के रूपों को ध्यान से देखें। स्वरादि धातु के लिये आगम आ है।

आधार इ-इ ३ आ-इ-ए-त् = ऐयेत्

२ आ-इ-ए-स् = आ-इये: = ऐये:

१ आ-इ-ए-अम् आ-इययम् = ऐययम्

केवल २ एकव० ऐये: रूप ही मिलता है। आगम आट् के साथ इ की सन्धि से वृद्धि ऐ बनता है (आटश्च)।

किसी धातु के सारे रूप तो मिलते नहीं, यथाप्राप्त रूप धातुओं के निर्देश के साथ प्रस्तुत किये जाते हैं। कुछ रूपों में आगम अ नहीं भी है।

परस्मैपद

एकवचन	**द्विवचन**	**बहुवचन**
३ अ-जगम्+त्=अजगन्		च्यु अचुच्यवुः
चित् अ-चिके-त्, अचिकेतत्		मंद् अममन्दुः अममदुः
रन् रारन् अचिकितत्	वाश् अवावशीताम्	
स्तभ् तस्तंभत्		
ग्रभ् अ-जग्रभीत्		
२ अ-जगम् + स् = अजगन्	मुच् अमुमुक्तम्	गम् अजगन्त
नम् ननमः		अजगन्तन

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

विश् अविवेशीः		च्यु अचुच्यवीतन
भुज् अबुभोजीः		भृ अजभर्तन
१ चक्ष् अचचक्षम्	-	-
ग्रभ् अजग्रभम्		
स्तु अतुष्टवम्		
कृ चकरम्		
चित् चिकेतम्		

आत्मनेपद

३ दिश् दिदिष्ट	-	कृ अचक्रिरन्
		गम् अजग्मिरन्
		पच् अपेचिरन्
		वृत् अववृत्रन्
		सृज् अससृग्रन्
		त्विष् अतित्विषन्त
		कृप् चकृपन्त
		धृष् दधृषन्त
२ गृ जुगूर्थाः	-	-
स्वप् सुषुप्थाः		
१ श्रु अशुश्रवि	-	-

(१०६) लिट् + लेट्

परस्मैपद				आत्मनेपद			
३ चित् चिकेतत्	-	-	-	३ तप्	ततपते	-	-
हन् जघनत्	-	-	-	जुष्	जुजोषते	-	-
कन् चाकनत्	-	-	-	युज्	युयोजते	-	-

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

	तन्	ततनत्	-	ततनन्	शम्	शशमते	-	-
	स्तु	तुष्टवत्	-	-	धृष्	दधृषते	-	दधृषन्त
	भृ	जभरत्	-	-	वृध्	वावृधते	-	-
	प्री	पिप्रयत्	-	-	कन्	-	-	चाकनन्त
	दिश्	दिदेशत्	-	-	तन्	-	-	ततनन्त
	रन्	रारणत्	-	-	क्रम्	-	-	चक्रमन्त
	बुध्	बुबोधति	-	-	अंश्	-	-	
	मुच्	मुमोचति	-	-				
		मुमोचत्	-	-				
	शू	शूशुवत्	-	-				
	विद्	विविदत्	-	-				
	धृष्	दधर्षति	-	-				
	वृत्	ववर्तति	-	-				
		ववृतत्	-	-				
	सह्	सासहत्	-	-				
	स्पृश्	पस्पर्शत्	-	-				
	प्रथ्	-	-	पप्रथन्				
२	तन्	ततनः	-	-	-	-	-	-
	बुध्	बुबोधः	-	-				
	प्रथ्	पप्रथः	-	-				
	कन्	चाकनः	-	-				
	चित्	चिकितः	चिकेतथः	-				
	जुष्	जुजोषः	जुजोषथः	जुजोषथ				
	प्री	पिप्रियः	-	-				

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

	रन्	रारणः	-	-			
	मुच्	मुमुचः	-	-			
१	अञ्ज्	अनजा आनजा	-	१	अंश्	-	अनशामहै (=आनशामहै)
	तन्	-	-	ततनाम			
	कन्	-	-	चाकनाम			
	शू	-	-	शूशवाम			

(१०७) लिट् + लोट्

परस्मैपद				आत्मनेपद			
३ भू	बभूतु	(बभूताम् बभूवतु)		३	-	-	-
मुच्	मुमोक्तु	-	-		-	-	-
२ शास्	शशाधि	-	-	२	वृत्	ववृत्स्व	- ववृद्ध्वम्
मुच्	मुमुग्धि	मुमुक्तम्	-				
दिश्	दिदिड्ढि	-	दिदिष्टन				
वृत्	-	-	ववृत्तन				
वृज्	-	विवृक्तम्	-				
चित्	चिकिद्धि	-	-				

(१०८) लिट् + लिङ्

३ भू	बभूयात्	(बभूयाताम्	बभूयुः)	३ वृत्	ववृतीत	-	-
गम्	जगम्यात्	(जगम्याताम्)	जगम्युः				
अञ्ज्	अनज्यात्	-	-				
वृत्	ववृत्यात्	-	-				

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

२	भू	बभूयाः	-	-	२	वृध्	वावृधीयाः	-	-
	वृत्	ववृत्याः	-	-					
	गम्	-	जगम्यातम्	-					
१	अंश्	आनश्याम्	-	-	१	वृत्	ववृतीय	-	ववृतीमहि
	गम्	जगम्याम्	-	-					
	रिच्	रिरिच्याम्	-	-					
	वृत्	ववृत्याम्	-	ववृत्याम					

लिट् + आशीर्लिङ्

१	सह्		-	-	सह्	सासहीष्ठाः	-	

ये सारे वैदिक रूप अथर्ववेद से ही दुर्लभ होने लगते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में छिटपुट कहीं-कहीं मिल जाते हैं। उपनिषदों में तो इनकी कल्पना तक नहीं रह जाती।

(१०९) अनुप्रयुक्त लिट्

अथर्ववेद में एकबार गम् धातु को अय से आगे बढ़ाकर एक स्त्री० शब्द गमया बनाया। इसके द्वितीया एकवचन वाले रूप को कृ के लिट् वाले रूप के साथ जोड़ा - गमयां चकार = भेजा। ब्राह्मण साहित्य में कुछ नये प्रयोग आने लगे- बोधयां चकार, बोबुधां चकार, बभुत्सां चकार। फिर गुरु स्वर वाले कुछ एकाक्षर धातु भी आगये - आसां चकार, एधां चकार- उज्झां चकार। फिर तो अस् और भू वाले भी लिट् के रूप जुटने लगे - गमयामास, गमयांबभूव।

पाणिनि बहुत सारे धातुओं का उल्लेख करते हैं और अन्त में कहते हैं - कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि।

संस्कृत में साधारण धातु को यदि प्रेरणार्थक बनाते हैं तो इसी का प्रयोग करते हैं - रामो वनं जगाम पिता रामं वनं गमयामास।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

लुङ् लकार

(११०) लुङ् के भी आधार कई विकरणों से बनते हैं। पाणिनि ने 'च्लि लुङि' कहने के बाद ही झट से कह दिया 'च्ले सिच्'। उन्हें रुकना चाहिये था। च्लि का मतलब है शून्य, और गा, स्था, दा, धा, भू और पा के बाद तो कुछ लगता ही नहीं। उनके आधार शून्य विकरण से बनते हैं। सिच् के लोप करने की जरूरत ही नहीं थी।

कुछ धातुओं में विकरण अ लगता है। कुछ अन्य दुहराते हुए धातुओं में भी - अ - विकरण लगता है।

(क) अतः लुङ् के आधार के लिये पहले च्लि, अङ् और चङ् विकरणों का नाम लिया जा सकता है।

(ख) पाणिनि ने संस्कृत को ध्यान में रखकर कहा है कि जिन धातुओं के उपधा में इ उ ऋ स्वर तथा अन्त में श् ष् ह् व्यंजन हैं उनमें - स विकरण लगता है। भूतकाल वाला अ- आगम तो शुरु में रहता ही है। लेकिन व्यंजनों में ज् भी देखा गया है तथा उपधा या अन्त में दूसरे स्वर भी। वस्तुतः मौलिक आधार था धातु + स। भू से अ-भू-ष-त् रूप है, रा से अ-रा-स-त्, यज् से अ-य क्ष-त्।

१. कुछ धातुओं के बाद -स- दुहरा कर सस हो जाता है; सस- से घिसकर अस् - हो जाता है जो कुछ व्यंजनान्त धातुओं में लगता है (मन्द् मन्दस्, इत्यादि)। कुछ धातुओं के बाद सिष- घिसकर इष- हो जाता है। कुछ धातुओं के बाद तो-स्-ही रह जाता है, जो दो स्पर्शों के बीच लुप्त भी हो जाता है। अतः इस लुङ् प्रक्रिया में आठ तरह के आधार बन जाते हैं - १. शून्य (०) २.-अ-३. अभ्यास सहित अ (चङ्) ४.-स-५. सिष् ६. अस् ७. इष् ८.-स्-(सिच्)।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

२. इनमें अ (२) अभ्यास सहित -अ- (३) और-स-(४) तो- अ-वर्ग के कहे जायेंगे। शेष विषम वर्ग के। यहाँ भी एक तरह से सार्वधातुक आधार की झलक आ जाती है, उन सारी जटिलताओं के साथ ही।

३. लुङ् के आधार में लेट् लोट् और लिङ् विभक्तियों के अलावा आशीर्लिङ् विभक्तियाँ भी लगती है, जो इस प्रकार हैं —

	पर०				आ०		
३	यात्	यास्ताम्	यासुस्	३	ईष्ट	-	-
२	यास्	यास्तम्	यास्त	२	ईष्ठास्	-	-
१	यासम्	यास्व	यास्म	१	-	-	-

वेद में तो केवल एकव० ३ और १ तथा बहुव० १, और आ० एकव० ३.२ रूप मिलते हैं।

अ-वर्ग

१. अ - आधार (अस्यति वक्ति ख्यातिभ्योऽङ्)

(१११) धातु के बाद -अ- लगाया जाता है और धातु में कोई परिवर्तन नहीं होता। ऐसा लगता है कि तुदादि गण यहाँ भी आ गया है।

विद् विद

३	अविदत्	अविदताम्	अविदन्	अविदत	अविदेताम्	अविदन्त
२	अविदः	अविदतम्	अविदत	अविदथाः	अविदेथाम्	अविदध्वम्
१	अविदम्	अविदाव	अविदाम	अविदे	अविदावहि	अविदामहि

विनियोगार्थ

इन्हीं रूपों से यदि अ- आगम हटा दिया जाये तो वे आज्ञार्थक हो जाते हैं। यथाप्राप्त रूप ये हैं -

३	विदत्	-	विदन्	विदत	-	विदन्त

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

२	विदः	-	-	-	-	
१	विदम्	-	-	-	-	विदामहि

लुङ्+लेट्

३	विदाति विदात्	विदातः	विदान्	विदाते	विदैते	विदान्त
२	विदासि विदाः	विदाथः	विदाथ विदाथन	विदासे	विदैथे	विदाध्वे
१	विदानि विदा	विदाव	विदाम	विदै	विदावहै	विदाम है

लुङ् + लोट्

सद् सद

३	सदतु	सदताम्	सदन्तु सदत	सदताम्	सदेताम्	सदन्ताम्
२	सद	सदतम्	सदतन	सदस्व	सदेथाम्	सदध्वम्

लुङ् + लिङ्

३	विदेत्	विदेताम्	विदेयुः	विदेत	विदेयाताम्	विदेरन्
२	विदेः	विदेतम्	विदेत	विदेथाः	विदेयाथाम्	विदेध्वम्
१	विदेयम्	विदेव	विदेम	विदेय	विदेवहि	विदेमहि

लुङ् + आशीर्लिङ्

३	-	-	-	विदेष्ट (अथर्व०)	-	-
२	-	-	-	-	-	-
१	-	-	-	-	-	-

कुछ आधार अनियमित हैं - ख्या ख्य, व्या व्य, ह्वा ह्व, दा द, धा ध, स्था स्थ, शास् शिष, क्रन्द् क्रद, तंस् तस, ध्वंस् ध्वस, भ्रंश् भ्रश, रन्ध् रध, स्रंस् स्रस। दृश् से दर्श और दृश।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

चङ्

२ अभ्यास सहित अ - आधार

(११२) (णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्)

यह आधार धातुओं के दुहराने से बनता है। पहले अक्षर पर अ आ ऋ ॠ ऌ की जगह इ आ जाता है और पहला अक्षर गुरु होता है - जन् जीजन, नश् नीनश, कृष् चीकृष, पृ पीपर, भू बूभुव, गृ जीगर, स्वप् सीष्वप, हीड् जीहिड, वाश् वीवश। पहले अक्षर पर गुरु स्वर रखने से मौलिक धातुस्वर भी ह्रस्व हो जाता है। लेकिन कुछ अपवाद भी हैं - दीप् दिदीप, इत्यादि।

लुङ्

जन् जीजन

पर०	३ अजीजनत्	अजीजनताम्	अजीजनन्
	२ अजीजनः	अजीजनतम्	अजीजनत
	१ अजीजनम्	अजीजनाव	अजीजनाम
आ०	३ अजीजनत	अजीजनेताम्	अजीजनन्त
	२ अजीजनथाः	अजीजनेथाम्	अजीजनध्वम्
	१ अजीजने	अजीजनावहि	अजीजनामहि

कभी अ आगम नहीं रहता है - भी बीभयत्, श्नथ् शिश्नथत्, शिश्नत्। कहीं आधार का अन्तिम अ ही नहीं रहता है — श्रि अशिश्रेत्। ३ बहुव० में कभी अन्, कभी उस्-स्रंस् असिस्रसन्, सद् असीषदन्, भज् अबीभजुः।

विनियोगार्थ

लेकिन हम यह भी जानते हैं कि अ आगम रहित रूप आज्ञार्थक हो जाते हैं —

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

पर०	३	च्यु	चुच्यवत्	-	रम् रीरमन्
		धृ	दीधरत्	-	शुच् शूशुचन्
		स्वद्	सिष्वदत्	-	
	२	क्षिप्	चिक्षिपः	ह्वृ जिह्वरातम्	-
		स्पृश्	पिस्पृशः	-	-
		राध्	रीरधः	-	-
		साध्	सीषथः	-	-
	१	क्रुध्	चुक्रुधम्	-	-
		धृ	दीधरम्	-	-
आ०	३	-	-	स्वप्	सिष्वपन्त
	२	-	-	-	
	१	-	-	-	

लुङ् + लेट् पर०

३	क्लृप् चीक्लृपाति	-	-
	स्पृश् पिस्पृशाति	-	-
	साध् सीसधाति	-	-
	वच् वोच् वोचत्	-	-
२	तप् तीतपासि	-	-
१	राध् रारधा	-	रम् रीरमाम
			साध् सीसधाम
			क्रुध् चुक्रुधाम

लुङ् + लोट् पर०

वच् ववच् वउच् = वोच् वोच - (वच उम्)

३	वोचतु	-	श्रथ् शिश्रथन्तु	
			पृ पूपुरन्तु	
२	वोचतात् गृ जिगृतम् वोचतम्		गृ	जिगृत वोचत
	धृ दिधृतम्			दिधृत
			पत्	पप्तत
			सूद्	सुषूदत

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

लुङ् + लिङ्				
पर०	३	वोचेत्	वोचेताम्	वोचेयुः
	३	वोचेः	वोचेतम्	वोचेत
		रिष् रीरिषेः		
	१	वोचेयम्	वोचेव	वोचेम
आ०	३	-	-	-
	२	-	-	-
	१	वोचेय	-	वोचेमहि

लुङ् + आशीर्लिङ् आ०			
३	रिष् रीरिषीष्ट	-	-
२	सह् सासहीष्ठाः	-	-

३ स-आधार

(११३) (शल इगुपधादनिटः क्सः)

वैदिक भाषा के आदि काल में इस-स-विकरण की कोई सीमा नहीं थी। किसी भी धातु के बाद यथासंभव यह जोड़ा जा सकता था। भू के बाद (परि + अ - भू - ष - त्), रा के बाद (रा - स - ताम्, - रा- स - न्ताम्), धी के बाद (धी - ष - माण)। तथापि इस के सारे रूप नहीं मिलते, क्योंकि यह कई आधारों में बिखर गया।

धातुस्वर में कोई परिवर्तन नहीं होता, पर अन्तिम व्यञ्जन श् ष् ह् ज् के साथ मिलकर स ही सर्वत्र क्ष हो जाता है।

लुङ्									
परस्मैपद					आत्मनेपद				
३	भू	अभूषत्	-	-	३	दुह्	अधुक्षत	-	-
	दिश्	अ-दिक्षत्	-	-			धुक्षत		

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

	मिश्	अमिक्षत्	-	-		दुक्षत			
	स्पृश्	अस्पृक्षत्	-	अस्पृक्षन्					
	क्रुश्	अक्रुक्षत्	-	-		मृज्	-	-	अमृक्षन्त
	दुह्	अदुक्षत्	-	दुक्षन्					
		अधुक्षत्	अधुक्षताम्	अधुक्षन्					
				धुक्षन्					
	पिष्	-	-	पिक्षन्					
	रुह्	अरुक्षत्	-	अरुक्षन्					
	वृज्	अवृक्षत्	-	-					
	लिह्	अलिक्षत्	-	-					
	त्रा	-	अत्रासताम्	-					
२	द्रुह्	अद्रुक्षः	-	-	२	कृष्	अकृक्षथाः	-	-
	दुह्	अधुक्षः	-	-					
	क्रुश्	अक्रुक्षः	-	-					
	मृज्	अमृक्षः	-	मृक्षत					
	रुह्	अरुक्षः	-	-					
१	वृज्	अवृक्षम्	-	अवृक्षाम	१	-	-	-	
	मृज्	-	-	अमृक्षाम					
	रुह्	-	-	अरुक्षाम					

आगम रहित आज्ञार्थक

(विनियोगार्थ)

	परस्मैपद					आत्मनेपद			
३	द्विष्	द्विक्षत्	-	-	३	दुह्	दुक्षत	-	-
							धुक्षत	-	धुक्षन्त

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

२ दुह्	दुक्षः	-	-	२	-	-	-	
मृश्	मृक्षः	-	-					
मृज्	-	-	मृक्षत					
१ दृश्	दृक्षम्	-	-	१	-	-	-	
मृज्	मृक्षम्	-	-					

लुङ् + लेट्

लुङ् + लोट्

३ यज्	-	यक्षताम्	-	३	रा	रासताम्	-	रासन्ताम्
२ नी	नेष	-	-	२	दुह्	धुक्षस्व	-	-
पृ	पर्ष	-	-					
मृज्	-	मृक्षतम्	-					

लुङ् + लिङ्

लुङ् + आशीर्लिङ्

जिस आधार से वंश का प्रारंभ हुआ वही पंगु होकर रह गया। शाखाये तो खूब फैलीं। एक शाखा हुई सिष्, दूसरी सस्>अस्, तीसरी इष्- और चौथी स् -।

४ सिष् - आधार

(यमरमनमातां सक् च)

(११४) कुछ आकारान्त तथा न् म् व्यंजनान्त धातुओं के आगे सिष् - विकरण लगता है। वे हैं - गा; ज्ञा, प्या, या, हा, वन् रम्। बाद में ध्या, घ्रा, वा, ह्वा भी सम्मिलित हो जाते हैं।

पर०	३	या	-	अयासिष्टाम्	अयासिषुः
		गा	-	-	अगासिषुः

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

	२	या	-	-	अयासिष्ट
	१	या	अयासिषम्	-	-

आगम रहित आज्ञार्थक

(विनियोगार्थ)

पर०	३	हा	-	हासिष्टाम्	हासिषुः
	२	-	-	हासिष्टम्	हासिष्ट
	१	रम्	रंसिषम्	-	-

लुङ् + लेट्

पर०	३	गा	गासिषत्	-	-
		या	यासिषत्	-	-
	२		-	-	-
	१		-	-	-

लुङ् + लोट्

पर०	३		-	-	-
	२	या	-	यासिष्टम्	यासिष्ट

लुङ् + लिङ्

आ०	३		-	-	-
	२		-	-	-
	१	वन्	वंसिषीय	-	प्या प्यासिषीमहि

लुङ् + आशीर्लिङ्

आ०	३	-	-	-

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

२	या	यासिषीष्ठाः	-	-
१	-	-	-	-

५ इष्-आधार

(११५) परस्मैपद एकवचन में प्रथमपु० और मध्यमपु० विभक्तियों के पहले इष् सिकुड़कर ई हो जाता है। क्रम् क्रमिष् क्रमी -

लुङ्					
३ अक्रमीत्	अक्रमिष्टाम्	अक्रमिषुः	३ अक्रमिष्ट	अक्रमिषाताम्	अक्रमिषत
२ अक्रमीः	-	-	२ अक्रमिष्ठाः	-	-
१ अक्रमिषम्	-	अक्रमिष्म	१ अक्रमिषि	-	-
अक्रमीम्					
वध् वधीम्	-	-			
ग्रभ् अग्रभीम्	-	अग्रभीष्म			
ग्रह् अग्रहिषम्	-	-			

आगमरहित आज्ञार्थक
(विनियोगार्थ)

३ अश् अशीत्	-	-	३ यु यविष्ट	-	-
तृ तारीत्	-	-			
जॄ -	-	जारिषुः			
२ अव् अवीः	-	-	२ मृष् मर्षिष्ठाः	-	-
तृ तारीः	तारिष्टम्	-			
युध् योधीः	-	-			
सू सावीः	-	-			
मृध् -	मर्धिष्टम्	-			

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

	वध्	-	वधिष्ट						
			वधिष्टन						
१	शंस्	शंसिषम्	-	-	१	राध्	राधिषि	-	-
	श्रम्	-	-	श्रमिष्म		व्यथ्	-	-	व्यथिष्महि

लुङ् + लेट्

३	कृ	कारिषत्	-	-	३	सन्	-	-	सनिषन्त
	बुध्	बोधिषत्	-	-					
	सन्	-	-	सनिषन्					
२	अव्	अविषः	-	-	२		-	-	-
	कन्	कानिषः	-	-					
१	दू	दविषाणि	-	-	१	याच्	-	-	याचिषामहै

लुङ् + लोट्

३	अव्	अविष्टु	अविष्टाम्	-		-	-	-	-
२		अविड्ढि	अविष्टम्	अविष्टन		-	-	-	-

लुङ् + लिङ्

		-	-	-	३		-	-	-
		-	-	-	२		-	-	-
		-	-	-	१	एध्	एधिषीय	-	-
						गम्	ग्मिषीय	-	-
						रुच्	रुचिषीय	-	-
						सह्	-	सहिषीवहि	-
						तृ	-	-	तारिषीमहि

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

लुङ् + आशीर्लिङ्					
३	-	-	-	३ जन् जनिषीष्ट -	-
				२ मुद् मोदिषीष्ठाः-	-
	-	-	-	१ -	-	-

६ अस् - आधार

(११६) इस आधार से लकार वाले कोई रूप दृष्टिगोचर नहीं होते। कुछ व्यंजनान्त धातु के आगे अस् - लगाकर उसमें - आन प्रत्यय जोड़ते हैं। इस प्रकार कुछ आत्मनेपद क्रियात्मक विशेषण बनते हैं — मन्द् मन्दस् मन्दसान, यम् यमस् यमसान, वृध् वृधस् वृधसान, ऋञ्ज् ऋञ्जस् ऋञ्जसान, इत्यादि।

७ स् - आधार

(च्लेः सिच्)

(११७) स् - विकरण लगने पर परस्मैपद में धातु स्वर में वृद्धि होती है, अ आ हो जाता है। आत्मनेपद में धातु स्वर इ ई उ में गुण होता है, अन्य ज्यों के त्यों रहते हैं।

परस्मैपद एकवचन में ऋ के आर् हो जाने पर विकरण -स्- सहित विभक्ति का ३ त् और २ स् लुप्त हो जाता है। नहीं तो दोनों के बीच में- ई- घुसाकर इनकी रक्षा हो जाती है - भृ भार्-स्-त्/स् = अ-भार् = अभाः, कृ कार् अ-कार्+स्+ई-त् = अकार्षीत्। यह दूसरी प्रक्रिया अथर्ववेद से शुरु होती है।

लुङ्

भृ भार्ष् बुध् बुध् भुत्स्

३ अभाः	आभार्ष्टाम्	अभार्षुः	३ अबुद्ध	अभुत्साताम्	अभुत्सत
२ अभाः	अभार्ष्टम्	अभार्ष्ट	२ अबुद्धाः	अभुत्साथाम्	अभुद्ध्वम्
१ अभार्षम्	अभार्ष्व	अभार्ष्म	१ अभुत्सि	अभुत्स्वहि	अभुत्स्महि

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

स्तु स्तोष्

३ अस्तौषीत्	अस्तौष्टाम्	अस्तौषुः	३ अस्तोष्ट	अस्तोषाताम्	अस्तोषत
२ अस्तौषीः	अस्तौष्टम्	अस्तौष्ट	२ अस्तोष्ठाः	अस्तोषाथाम्	अस्तोढ्वम्
१ अस्तौषम्	अस्तौष्व	अस्तौष्म	१ अस्तोषि	अस्तोष्वहि	अस्तोषमहि

आगम रहित आज्ञार्थक

(विनियोगर्थ)

पर० एकवचन १ स्तु स्तोषम् जि जेषम् यू यौषम् यूषम् या येषम् गा गेषम् स्था स्थेषम्

बहुवचन जि जेष्म गा गेष्म दा देष्म यु यौष्म

लुङ् + लेट्

स्तु स्तोष्

३ स्तोषति	स्तोषत्	स्तोषतः	स्तोषन्	३ स्तोषते	-	स्तोषन्ते
२ स्तोषसि	स्तोषः	स्तोषथः	स्तोषथ	२ स्तोषसे	स्तोषाथे	-
१ स्तोषाणि		स्तोषाव	स्तोषाम	१ स्तोषै	-	-
				दृश् २ दृक्षसे		
				पृच् पृक्षसे		

लुङ् + लोट्

आ० २ एकव० सह्-स्-स्व = साक्ष्व

लुङ् + लिङ्

आ०	३	भज्	भक्षीत	-	मन् मंसीरत
	२	-	त्रा त्रासीथाम्	-	
	१	दा	दिषीय	-	-
		रा	रासीय	-	वन् वंसीमहि वसीमहि

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

भज्	भक्षीय	-	भक्षीमहि
मन्	मंसीय	-	मंसीमहि
मुच्	मुक्षीय	-	दुह् धुक्षीमहि
सह्	साक्षीय	-	सक्षीमहि

लुङ् + आशीर्लिङ्

३	दृ	दर्षीष्ट	-	-
	मन्	मंसीष्ट	-	-
	मृच्	मृक्षीष्ट	-	-
२	मन्	मंसीष्ठाः	-	-
१	-	-	-	-

८ शून्य आधार

(च्लि लुङि)

(११८) बहुत से धातु विना विकरण के ही लुङ् विभक्तियों से मिल जाते हैं।

स्था

३ अस्थात्	अस्थाताम्	अस्थुः	३ अस्थित	-	अस्थिरन्
२ अस्थाः	अस्थातम्	अस्थात	२ अस्थिथाः	-	-
१ अस्थाम्	अस्थाव	अस्थाम	१ -	-	अस्थिमहि

कृ

३ अकः	अकर्ताम्	अक्रन्	३ अकृत	अकृताम्	अक्रत
२ अकः	अकर्तम्	अकर्त	२ अकृथाः	-	अकृध्वम्
१ अकरम्	-	अकर्म	१ अक्रि	अकृवहि	अकृमहि

भू

३ अभूत्	अभूताम्	अभूवन्

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

२ अभूः अभूतम् अभूत अभूतन

१ अभूवम् अभूव अभूम

पर० ३ एकवचन क्रम् अक्रन् गम् अगन् गन् घस् अघः चित् अचेत्

तन् अतन् दृ अदः भिद् अभेत् भ्राज् अभ्राट्

मुच् अमोक् म्यक्ष् अम्यक् वृत् अवर्त् स्तृ अस्तः

नश् आनट् वृ आवः वस् आवः वृज् वक्

३ बहुव० घस् अक्षन् गम् अग्मन्

आ० ३ एकव० गम् अगत बहुव० अग्मत

२ अगथाः - -

१ - - - द्विव० अगन्वहि बहुव० अगन्महि

तन् ३ एकव० अत्नत

दा २ एकव० अदिथाः

स्था अस्थिथाः

धा ३ एकव० अधित १ बहुव० अधिमहि अधीमहि

घस् ३ एकव० घस्+त घ्-स्-त घ् ध = ग्ध

ऋ बहुवचन २ अर्त आर्त ३ अ-अर्-अत = आरत

३ बहुव० क्लृप् अक्लृप्रन् ग्रभ् अगृभ्रन् जुस् अजुस्रन्

दृश् अदृश्रन् पद् अपद्रन् बुध् अबुध्रन्

दृश् अदृश्रन् पद् अपद्रन् बुध् अबुध्रन्

युज् अयुज्रन् वस् अवस्रन् विश् अविश्रन्

वृत् अवृत्रन् सृज् असृग्रन् स्था अस्थिरन्। दृश् से अदृश्रम् भी, बुध् से अबुध्रम् भी, सृज् से असृग्रम् भी।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

आगम रहित आज्ञार्थक

(विनियोगार्थ)

३	भू	भूत्	-	भूवन्	३	ऋ	अर्त	-	-
	श्रि	शिश्रेत्	-	-		अश्	अष्ट	-	-
	नश्	नक् नट्	-	-		विज्	विक्त	-	-
	वृ	-	-	व्रन्		वृ	वृत	-	-
	क्रम्	-	-	क्रमुः			-	-	-
	धा	-	-	धुः			-	-	-
२	भू	भूः -	-		२	नुद्	नुत्थाः	-	
	जि	जेः	-	-		मृ	मृथाः	-	-
	भी	भेः	-	-		मृष्	मृष्ठाः	-	-
	दघ्	धक्	-	-		रिच्	रिक्थाः	-	-
	भिद्	भेत्	-	-					
	रुज्	रोक्	-	-					
१	कृ	करम्	-	-	१	नश्	नंशि	-	-
	दृश्	दर्शम्	-	-		धा	-	-	धीमहि
	भू	भुवम्	-	भूम					
	भुज्	भोजम्	-	-					
	दघ्	-	-	दघ्म					
	हू	-	-	होम					
	छिद्	-	-	छेद्म					

लुङ् + लेट्

३	करति करत्	करतः	करन्ति	करन्	३ करते	-	-
२	करसि करः	करथः	-	-	२ करसे	-	-
१	कराणि करा	-	कराम	-	१ -	-	-

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

२ एकव० में कभी विभक्ति सि है।

यज् यक्षि(यज् + सि = असि)

वह् वक्षिं(वह् + सि = असि)

पृ पर्षि(पृ + सि = असि)

लुङ् + लोट्

३ गम् गन्तु गन्ताम् गमन्तु ३ - - -

धा धातु - धान्तु - - -

भू भूतु - - - - -

श्रु श्रोतु - श्रवन्तु - - -

पा - पाताम् -

वह् - वोढाम् -

२ कृ कृधि कृतम् कर्तम् कृत कर्त कर्तन २कृ कृष्व - कृध्वम्

गम् गधि गहि गतम् गन्तम् गत गन्त गन्तन

भू बोधि भूतम् भूत, भूतन

दा - दातम् -

पृ पूर्धि - -

वह् - - वोढ्वम्

युध् योधि - -

शक् शग्धि - - सच सक्ष्व - -

सा साहि - - वन् वस्व - -

वृ - वर्तम् - रा रास्व - -

दघ् - दग्धम् - यज् यक्ष्व - -

वह् - वोढम् - मद् मत्स्व - -

श्रु - श्रुतम् श्रुत श्रोत युज् युक्ष्व -

धा - - धातन धिष्व - -

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

लुङ् + लिङ्

३	भू	भूयात्	(भूयाताम्	भूयुः)	३	ऋ	अरीत	-	-
	अश्	-	-	अश्युः					
	धा	-	-	धेयुः					
२		भूयाः	(भूयातम्	भूयात)	२		-	-	-
	गम्	गम्याः	-	-					
	ऋध्	ऋध्याः	-	-					
	अश्	अश्याः	-	-					
१	अश्	अश्याम्	-	अश्याम	१	अश्	अशीय	-	अशीमहि
	वृज्	वृज्याम्	-	-		दध्	-	-	द्धीमहि
	दा	देयाम्	-	-		नश्	-	-	नशीमहि
	भू	-	-	भूयाम					
	स्था	-	-	स्थेयाम					
	कृ	-	-	क्रियाम					
	ऋध्	-	-	ऋध्याम					

लुङ् + आशीर्लिङ्

३	अश्	अश्याः	-	-	३	पद्	पदीष्ट	-	-
	गम्	गम्याः	-	-		मुच्	मुचीष्ट	-	-
	दघ्	द्ध्याः	-	-		-	-	-	-
	पा	पेयाः	-	-		-	-	-	-
२	भू	-	भूयास्तम्	भूयास्त	२	-	-	-	-
१		भूयासम्	-	-	१	-	-	-	-
	कृ	-	-	क्रियास्म					

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

ऌ - लकार

(११९) -स्- और-इष्-विकरण वाले लुङ् के आधार को जब -य- से आगे बढ़ाते हैं तो वह ऌ - लकार का आधार बनता है। उसमें लट् की विभक्ति लगाकर ऌट् के रूप बनाते हैं, और लङ् की विभक्ति लगाकर ऌङ् के रूप। ऌट् भविष्यकाल का वाचक है, ऌङ् भविष्यात्मक भूत का। ऌङ् में धातु के पहले अ आगम भी लगता है।

ऌट् और ऌङ् का द्वन्द्व हू-ब-हू लट् और लङ् की छाया है। इस प्रकार, संस्कृत के सारे धातु -स्य और इष्य आधार वाले दो दलों में बँट गये हैं।

प्ररेणार्थक (गमय - कारय - आदि) तथा ऋकारान्त धातु कृ भृ आदि में तो इष्य - ही लगता है। प्रेरणार्थक का अन्तिम अ हट जाता है तथा ऋ का गुण हो जाता है - गमय गमयिष्य, कृ करिष्य इत्यादि।

धातु का अन्तिम इ उ तथा उपधा वाला ह्रस्व इ उ ऋ गुण रूप में आ जाता है - जि जेष्य नी नेष्य, भू भविष्य, कृत् कर्त्स्य, वृत् वर्तिष्य, इत्यादि।

(१२०) ऌट् के रूप तो वेद में परस्मैपद और आत्मनेपद दोनों में मिलते हैं।

कृ करिष्य

३	करिष्यति	करिष्यतः	करिष्यन्ति
२	करिष्यसि	करिष्यथः	करिष्यथ
१	करिष्यामि	करिष्यावः	करिष्यामः
३	करिष्यते	करिष्येते	करिष्यन्ते
२	करिष्यसे	करिष्येथे	करिष्यध्वे

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

१	करिष्ये	करिष्यावहे	करिष्यामहे

(१२१) लृङ् के रूप तो संहिता में आने ही लगे थे। ऋग्वेद में एक ही रूप मिलता है - अभरिष्यत्। इसके सारे रूप इस प्रकार हैं -

३	अभरिष्यत्	अभरिष्यताम्	अभरिष्यन्
२	अभरिष्य:	अभरिष्यतम्	अभरिष्यत
१	अभरिष्यम्	अभरिष्याव	अभरिष्याम

आत्मनेपद के भी कुछ रूप मिलते हैं। ब्राह्मण साहित्य में इसका प्रयोग बढ़ता है।

लुट् लकार

(१२२) क्रिया में तृ प्रत्यय जोड़कर कर्तृवाचक संज्ञा बनाते हैं। प्रथम पुरुष में तो प्रथमा वाले रूप ही पर्याप्त हैं।

गम् गन्तृ

३	गन्ता	गन्तारौ	गन्तार:

मध्यम और उत्तम पुरुष में प्रथमा-एकवचन वाले रूप में अस् धातु के लट् वाले रूप जोड़ देते हैं—

२	गन्तासि	गन्तास्थ:	गन्तास्थ
१	गन्तास्मि	गन्तास्व:	गन्तास्म:

ये तो परस्मैपद के रूप हैं। आत्मनेपद के रूप भी मिलते हैं — भू २. एकव० भवितासे, १. बहुव० भवितास्महे।

कर्मवाच्य

(१२३) कर्म और भाव वाच्य के रूप आत्मनेपद विभक्तियों से बनते हैं —

कर्तृवाच्य	कर्म या भाव वाच्य
स चकार	तेन चक्रे
स करिष्यति	तेन करिष्यते

(१२४) लेकिन दो जगह कुछ और बातें होती हैं।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

सार्वधातुक आधार उदात्त -य- प्रत्यय से बनता है जिसके बाद उसमें लट् लङ् लेट लोट् लिङ् की आत्मनेपद विभक्तियाँ लगती हैं (सार्वधातुके यक्)। इस - य - के लगने पर —

१. धातु का अन्तिम आ ई में बदल जाता है — दा दीय, धा धीय, मा मीय। लेकिन संयुक्त व्यंजन के बाद वाला आ ज्यों का त्यों रह जाता है— ज्ञ ज्ञाय, ध्या ध्याय ।
२. धातु का अन्तिम इ उ दीर्घ हो जाता है - जि जीय, स्तु स्तूय।
३. ऋ रि में बदल जाता है - कृ क्रिय, लेकिन स्मृ स्मर्य।
४. ॠ इर् उर् द्वारा ईर् ऊर् हो जाता है - शॄ शीर्य - पॄ पूर्य।
५. व्यंजनान्त धातुओं का बीच वाला अनुनासिक लुप्त हो जाता है - अञ्ज् अज्य, बन्ध् बध्य, भञ्ज् भज्य, शंस् शस्य।
६. कुछ धातुओं में सम्प्रसारण होता है - यज् इज्य, वच् उच्य, ग्रह् गृह्य।
७. प्रेरणार्थक क्रियाओं का अय हट जाता है - भज् भाजय भाज्य।

रूपावली

हु हूय

लट्

३	हूयते	हूयेते	हूयन्ते
२	हूयसे	हूयेथे	हूयध्वे
१	हूये	हूयावहे	हूयामहे

लङ्

३	अहूयत	अहूयेताम्	अहूयन्त

आगमरहित आज्ञार्थक लङ्

३	सू सूयत

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

लेट्

३	वह् उह्याते	-	-
	भृ भ्रियाते	-	-
	कृ क्रियाते	-	क्रियान्तै

लोट्

३	हूयताम्	हूयेताम्	हूयन्ताम्
२	हूयस्व	हूयेथाम्	हूयध्वम्

ऋग्वेद और अथर्ववेद में लिङ् के रूप नहीं मिलते।

तन् तायते, खन् खायते, जन् जायते, मृ म्रियते, धृ ध्रियते कर्मवाच्य के नहीं भाववाच्य के रूप है।

ऋग्वेद में, स्तवते = स्तूयते, हवते = हूयते श्रु से ३ बहुव० शृण्विरे = श्रूयन्ते।

(१२५) लुङ् प्रथमपु० एकव० में कर्म या भाववाच्य के लिये सबल विभक्ति -इ- है, जिसके पहले धातु के अन्तिम स्वर इ उ ऋ की वृद्धि तथा उपधा स्वर का गुण होता है - कृ अकारि (अक्रि भी), श्रि अश्रायि, स्तु अस्तावि; विद् अवेदि, बुध् अबोधि, दृश् अदर्शि। जन् अजनि, वह् अवहि, गम् अगमि। आ और इ के बीच में-य्-चला आता है - दा अदायि, धा अधायि।

आगम रहित आज्ञार्थक लुङ्

श्रु श्रावि (सुना जाये), धा धायि (रखा जाये), जार नामधातु जारय से जारयायि (उसका अलिंगन किया जाये)।

बनावटी क्रियायें

प्रेरणार्थक (णिजन्त)

(१२६) वेद में चुरादि गण की कल्पना तक नहीं थी। कुछ साधारण धातु ही -अय द्वारा फैल जाते थे। अर्थ में थोड़ा परिवर्तन तो आ ही जाता है - पत् (उड़ना) पतति = उड़ता है, पतयति = उड़ा करता है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अय के पहले जिन धातुओं के स्वर दीर्घ, गुण या वृद्धि अवस्था में आ जाते थे वे प्रेरणार्थक होते थे। जैसे - रुच् रोचय, विद् वेदय - ऋद् अर्दय, तृप् तर्पय, क्लृप् कल्पय, क्रुध् क्रोधय, अम् आमय, नश् नाशय, पत् पातय, क्षि क्षयय, भू भावय, धृ धारय, श्रु श्रवय श्रावय, जॄ जरय-जारय दा दापय, स्था स्थापय, धा धपय, ज्ञा-ज्ञपय ऋ अर्पय, भी भीषय, पा पायय, दुष् दूषय।

लकारों के द्विवचन वाले रूप वेद में नहीं मिलते है। मध्यमपु० भी कम मिलते हैं।

रूपावली

लट्

प्र+ईर् १ प्रेरयामि
यत् यातय ३ यातयति
वृध् वर्धय ३ वर्धयन्ति बहुव०
शुभ् शुभय ३ बहुव० शुभयन्ते
मद मादय मदयन्ते

लङ्

वृत् वर्तय ३ अवर्तयत् एकव० तृप् तर्पय ३ अतर्पयन्त बहुव०
वृध् वर्धय ३ अवर्धयन्त बहुव०

आगम रहित आज्ञार्थक लङ्

तृप् तर्पयन्त = तर्पयन्तु

लेट्

प्र-चुद् ३ एकव० प्रचोदयात्
मद् ३ मादयैते द्विव०
२ मादयध्वे बहुव०

लोट्

यु यवय ३ बहुव० यवयन्तु
मद् मादय २ मादयध्वम् बहुव०
चत् चातय २ चातयस्व एकव०

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

लिङ्

धृ ३ धारयेत् धारयेताम् धारयेयुः धारयेत धारयेयाताम् धारयेरन्। महाभारत में कारयेत की जगह कारयीत। कारयीरन्। ये प्रयोग ब्राह्मण में दीखते हैं।

लृट्

इष् १ एषयिष्यामि वस् २ वास यिष्यसे

धृ ३ धारयिष्यति वृ ३ वारयिष्यते

ये ही चार रूप संहिताओं में मिलते हैं।

अनुप्रयुक्त लिट्

गमयां चकार

लुङ्

चङ् ज्ञा ज्ञापय ३ अजिज्ञिपत्

स्था स्थापय अतिष्ठिपत्

जि जापय - ३ अजिजपत्

इष् व्यथ् व्यथय २ व्यथयीः - -

ध्वन् ध्वनय ३ ध्वनयीत् - ध्वनयिषुः

व्यथ् १ व्यथयिषम् - -

नामधातु

(१२७) संज्ञा या विशेषण का क्रिया के रूप में प्रयोग ही नामधातु कहलाता है। यह ऋग्वेद और अथर्ववेद में भी दीखता है। इसके लिये मुख्य प्रत्यय - य है जो प्रेरणार्थक-अय से ज्यादा भिन्न नहीं है - मंत्र मंत्रय, अर्थ अर्थय, गोपा गोपाय, पृतना पृतनाय। पूर्ववर्ती इ उ दीर्घ हो जाता है - कवि कवीय, ऋजु ऋजूय, वसु वसूय, शत्रु शत्रूय। जार जारय, देव देवय, अश्व अश्वाय, ऋत ऋताय, अध्वर अध्वरीय, तविष तविष्य।

भिषज् भिषज्य, कभी-कभी भिषज् + ० + ति = भिषक्ति

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

लट्

पर० ३ नमस्यति नमस्यतः नमस्यन्ति
आ० एकव०३ नमस्यते २ नमस्यसे १ नमस्ये

लङ्

पर० ३ अनमस्यत् अनमस्यताम् अनमस्यन्
आ० अनमस्यत अनमस्येताम् अनमस्यन्त

आगम रहित आज्ञार्थक लङ्

पर०२ एकवचन नमस्यः ३ बहुव० नमस्यन्

लेट्

पर० एकव०३ नमस्यात् २ नमस्याः १ नमस्या
आ० ३ नमस्याते २ नमस्यासे १ -

लोट्

पर० एकव० ३ नमस्यतु २ नमस्य
आ० ३ - २ नमस्यस्व बहुव० नमस्यध्वम्

लिङ्

पर० एकव० ३ नमस्येत् २ नमस्येः १ नमस्येयम्
आ० ३ नमस्येत २ - -

लुङ्

वृष वृषाय २ बहुव० अवृषायिष्ट

आगम रहित आज्ञार्थक लुङ्

पाप पापय २ बहुव० पापयिष्ट

सन्नन्त

(१२८) इच्छा का बोध कराने के लिये साधारण धातुको दुहराकर उसके आगे -स लगाते हैं। धातु के दुहराने का विशेष नियम यह है कि पहले अक्षर पर अ आ ऋ ऌ की जगह इ होता है —

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

नी निनीष, भू बुभूष, दा दिदास, पा पिपास, ज्या जिज्यास, भिद् बिभित्स, दृश् दिदृक्ष। श्रु शुश्रूष, स्तु तुष्टूष, कृ चिकीर्ष। गा जिगीष पा पिपीष, धा दिधिष। पत् पिपतिष, गम् जिगांस (ऋग्वेद) जिगमिष, (अथर्व०), हन् जिघांस, वन् विवास, सन् सिषास। ध्वृ दुधूर्ष। दा दित्स, धा धित्स। दभ् दिप्स, लभ् लिप्स। गुह् जुगुक्ष - जघुक्ष, शास् शिष् शिक्ष-शीक्ष। चि चिकीष, जि जिगीष, घस् जिघत्स। तृ तुतूर्ष, बाध् बीभत्स, मन् मीमांस, यज् इयक्ष, (संस्कृत यियक्ष), नश् निनक्ष। अश् अशिशिष, एध् एदिधिष।

रूपावली

वन् विवास

लट्

पर०	३ विवासति	विवासतः	विवासन्ति
	२ विवाससि	विवासथः	विवासथ
	१ विवासामि	विवासावः	विवासामः
आ० एकव०	३ विवासते	२ विवाससे	१ विवासे
बहुव०	३ विवासन्ते	२ विवासध्वे	१ विवासामहे

लङ्

पर० एकव०	३ अविवासत्	२ अविवासः	१ अविवासम्

आगम रहित आज्ञार्थक लङ्

पर०	३ एकव०	विवासत्
आ०	३ बहुव०	विवासन्त

लेट्

पर० एकव०	३ विवासात्	२ विवासाः	१ विवासानि
बहुव०	विवासान्	-	-

लोट्

पर०	३ विवासतु	विवासताम्	विवासन्तु

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

लिङ्

पर०	३ विवासेत्	-	-	
आ० एकव०	३ -	२ -		१ विवासेय

लिट्

लुङ्

पर० एकव०	चित्	२ अचिकित्सीः	हन् अजिघांसीः
आ० एकव०	मन्	२ अमीमांसिष्ठाः	

यङन्त यङ्लुगन्त

(१२९) कुछ व्यंजनादि एकाक्षर धातुओं को दुहरा देते हैं, लेकिन पहले अक्षर पर दीर्घ या गुण स्वर ही होते हैं- निज् नेनिज्, दिश् देदिश्, नी नेनी, शुच् शोशुच्, नु नोनू, भू बोभू, काश् चाकश्, पत् पापत्, गम् जागम्, जंगम्, गृ जागृ, दृ दादृ, धृ दाधृ, चल् चाचल्, कृ चर्कृ, चर्किर्, कृष् चर्कृष्, दृ दर्दृ दर्दिर्, चर् चर्चर्, फर् पर्फर्, चल् चल्चल्, नम् नंनम्, जंभ् जंजभ्, दंश् दंदश्, स्तन् तंस्तन्, गम् गनीगम्, हन् घनीघन्, क्रन्द् कनीक्रन्द्, कनिक्रद्, स्कन्द् कनिस्कन्द्, चनिस्कन्द्, भृ भरीभृ, वृत् वरीवृत्, नु नवीनु, धू दविधव्, द्युत् द्यविद्युत्, बाध् बाबध्, वाश् वाश् गृ जर्गर् - जल्गुल्, चर् चर्चुर्, तृ तर्तुर् तर्तर्, गाह् जंगह्, बाध् बद्बध्, गृ जर्गुर्, ह्वर् जह्वर् > जर्भुर्।

इन अभ्यस्त आधारों पर कहीं तो पर० या आ० विभक्तियाँ सीधे जोड़ दी जाती हैं, और कहीं इन्हें य से आगे बढ़ाकर केवल आत्मनेपद विभक्ति लगाते हैं। अतः ये आधार दो तरह के हो जाते हैं - यङन्त और यङ्लुगन्त।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

रूपावली

यङन्त आधार

लट्

एकव०	३ दिश् देदिश्यते नी नेनीयते मृज् मर्मृज्यते			
	२ स्कु चोस्कूयसे			
	१		-	-
बहुवचन	३ मृज् मर्मृज्यन्ते			

यङ्लुगन्त आधार

निज् नेनिज्

लट्

पर०	३ नेनेक्ति	नेनेजीति	नेनिक्तः	नेनिजति
	२ नेनेक्षि		नेनिक्थः	—
	१ नेनेज्मि	नेनेजीमि	- नेनिज्मः	नेनिज्मसि
आ	३ नेनिक्ते		नेनिजाते	नेनिजते
	२	-	-	-
	१ नेनिजे	-	-	
नम् पर०	३ नंनमीति	-	-	

लङ्

पर०	३ दृ	अदर्दः	वृ अवरीवः	हू अजोहवीत्
				बहुव० दृ दर्दिरुः
	२ गृ	अजागः	-	-
	१ काश्	अचाकशम्	-	मृज् मर्मृज्म
आ०	३ दिश्	देदिष्ट	-	मृज् मर्मृजत

लेट्

पर०	३ नेनिजत्	-	नेनिजन्

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

	२ नेनिजः	-		-	
	१ नेनिजानि	नेनिजाव		नेनिजाम	
आ०	३ नेनिजते	नेनिजैते		नेनिजन्त	

लोट्

गृ	३ जागर्तु	जागरीतु	जागृताम् -	
	२ जागृहि		जागृतम्	जागृत
	जागृतात्			
	जागरीहि			

उपनिषद् में एकवार जागृत की जगह जाग्रत है।

लिङ्

पर०	३ विष्	वेविष्यात्	-	-
	२ -	-	-	-
	१ -	-	गृ	जागृयाम जाग्रियाम

लिट्

एकव०	३ जागार	२	-	१ जागर

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

क्रियात्मक विशेषण

(१३०) लकार से संबद्ध क्रियात्मक विशेषणों का उल्लेख तो उन्हीं के साथ हो जाना चाहिये था, क्योंकि इन क्रियात्मक विशेषणों में भी पर० और आ० का भेद है। पर क्रियात्मक विशेषण क्रिया होते हुए भी विशेषण की तरह अपना कारकीय रूप दिखाते हैं। अतः उनका अलग ही प्रसंग होता है।

सार्वधातुक आधार से संबद्ध क्रियात्मक विशेषण परस्मैपद में अत् (शतृ) प्रत्यय द्वारा बनते हैं, आत्मनेपद में अकारान्त आधार (भव, दीव्य, तुद, आदि) से मान द्वारा और अन्य आधार (इ, जुहु, सुनु, रुन्ध्, कुरु तथा क्रीण् आदि) से आन द्वारा। उदाहरण-भव भवत् भवन्त्, भवमान; पश्य पश्यत् पश्यन्त्, मन्य मन्यमान; तुद् तुद तुदन्त् तुदमान; जुहु जुह्वान, इ इयान, सुनु सुन्वान, रुध् रुन्धत् रुन्धान, कृ कुरु कुर्वत् कुर्वाण, क्री क्रीणत् क्रीणान, इत्यादि।

लिट् लकार से संबद्ध क्रियात्मक विशेषण भी पर० में वस् (क्वसु) प्रत्यय से और आ० में आन (कानच्) प्रत्यय से बनते हैं — कृ चकृवस् चक्राण, गम् जगन्वस् जग्मिवस् जग्मान, चित् चिकित्वस्, जि जिगीवस्, रिच् रिरिक्वस्, स्था तस्थिवस्, अञ्ज् अनजान, यज् ईजान, स्था तस्थान, इत्यादि।

लुङ् लकार से संबद्ध क्रियात्मक विशेषण भी पर० में अत् प्रत्यय द्वारा और आ० में अकारान्त आधार से मान द्वारा तथा अन्यत्र आन द्वारा बनते हैं - कृ क्रत् क्राण, गम् गमत् ग्मत्, दह् दक्षत् धक्षत्, विद् विदत् पा पात्, सह् सक्षत् मन्द् मन्दस् मन्दसान, धी धीषमाण, इत्यादि।

लृट् लकार से संबद्ध क्रियात्मक विशेषण पर० में अत् प्रत्यय से

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तथा आ० में मान प्रत्यय से बनते हैं - कृ करिष्य करिष्यत् करिष्यन्त् करिष्यमाण इत्यादि। वेद में ऐसे क्रियात्मक विशेषण नाममात्र के हैं। इनका फूलता-फलता प्रयोग लौकिक संस्कृत में दिखायी देता है।

लकारों से असंबद्ध क्रियात्मक विशेषण सीधे धातुओं से बनते हैं। वे हैं- भूतकालिक निष्ठा और भविष्यात्मक कृत्य।

निष्ठा

(१३१) धातु में उदात्त अबल प्रत्यय त लगता है। कभी-कभी धातु और प्रत्यय के बीच में इ चला आता है। धातुस्वर प्राय: ज्यों के त्यों रहते हैं, पर अन्तिम आ प्राय: इ या ई हो जाता है, कुछ धातुओं का अनुनासिक हट जाता है, तथा कुछ धातुओं में सम्प्रसारण होता है। त वाला रूप मुख्य रूप से कर्म वाच्य का है - या यात, जि जित, नी नीत, हु हुत, भू भूत, कृ कृत। वच् उक्त, भुज् भुक्त, नश् नष्ट, दुह् दुग्ध, सृज् सृष्ट। गम् गत, हन् हत, अञ्च् अक्त। धा धित हित, शास् शिष्ट। एक वार जघस् + त से जघ् स् + त द्वारा जघ् - ध = जग्ध। दा दात, लेकिन दद् + त = दत्त, कुछ उपसर्गों के बाद त्तः व्यात्त परीत्त देवत्त। ध्वन् ध्वान्त, क्रम् क्रान्त, शम् शान्त, भ्रम् भ्रान्त, ध्मा ध्मात ध्मित। खन् खात, जन् जात, वन् वात, सन् सात। ग्रभ् गृभीत ग्रह् गृहीत।

इन रूपों को कर्तृवाच्य का स्वरूप देने के लिये अथर्ववेद में पहली वार वत् जोड़ा गया - अश् अशित अशिता-वत्। इसके बाद ही तवत् प्रत्ययान्त कर्तृवाच्य के रूपों को प्रयोग शुरु हुआ। पर ब्राह्मण में भी ऐसे प्रयोग दुर्लभ ही हैं। संस्कृत में ही इसका प्रयोग कुछ बढ़ पाया, यद्यपि यहाँ भी गत्यर्थक धातु के साथ त कर्तृवाच्य का ही है - स गतः स गतवान्।

त की जगह बहुत से धातुओं में न लगता है - ली लीन, दू दून, द्रा द्राण, हा हीन, गृ गीर्ण, मृ मूर्ण, जृ जीर्ण, भिद् भिन्न, स्कन्द् स्कन्न, व्रश्च् वृक्ण, रुज् रुग्ण।

कहीं-कहीं तो त और न वाले दोनों रूप है - विद् वित्त विन्न, नुद् नुत्त

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

नुन्न, श्या शीत शीन, पृ पूर्त पूर्ण, शृ शीर्ण शूर्ण शूर्त, पृच् पृक्त पृग्ण, सद् सत्त सन्न।

कृत्य

(१३२) इस नाम से कई प्रत्यय है - य, त्य, आय्य, एन्य, त्व, तव्य, अनीय।

इन्हें धातुओं में सीधे जोड़ दिया जाता है। ये भी कर्म वाच्य से ही संबद्ध हैं। ये सभी सबल प्रत्यय हैं, जिस कारण धातुस्वर में गुण वृद्धि होती है।

य

दा देय, भू भव्य भाव्य, हु हव्य, द्विष् द्वेष्य, युध् योध्य, वच् वाच्य, ईड् ईड्य।

त्य

यह ह्रस्व स्वरान्त धातु में लगता है - इ इत्य, श्रु श्रुत्य, कृ कृत्य।

आय्य

पन् पनाय्य, विद् विदाय्य, श्रु श्रवाय्य, पन् पनय पनयाय्य, स्पृह् स्पृहयाव्य, धा दिधिष दिधिषाय्य।

एन्य

द्विष् द्विषेण्य, युध् युधेन्य, दृश् दृशेन्य, वृ वरेण्य।

त्व

कृ कर्त्व, हि हेत्व, सु सोत्व, सन् सनित्व, भू भवित्व भवीत्व।

तव्य

जन् जनितव्य, हिंस् हिंसितव्य।

अनीय

जीव् उपजीवनीय, मंत्र् आमंत्रणीय

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तव्य और अनीय तो अथर्ववेद में शुरु हुआ, लेकिन यही संस्कृत में छा गया (तव्यत्तव्यानीयर:)। पहले वाले प्रत्यय तो ऋग्वेद तक ही सीमित रहे। आय्य का उच्चारण आयिअ, एन्य का एनिअ तथा त्व का तुअ होता है। वरेण्यम् को वरेणिअम् पढ़ते हैं, तभी आठ अक्षर पूरा होता है (तत्सवितुर्वरेण्यम्)।

क्रियात्मक अव्यय

(१३३) पूर्वकालिक क्रिया

जाकर, खाकर, पीकर इत्यादि क्रिया रूप को पूर्वकालिक क्रिया कहते है। इसका मुख्य प्रत्यय है त्वा, जो त की तरह ही अबल और उदात्त स्वर वाला है -

भू भूत्वा, पा पीत्वा, मा मित्वा, भिद् भित्त्वा, युज् युक्त्वा, श्रु श्रुत्वा, हन् हत्वा, हा हित्वा, यज् इष्ट्वा, घस् जघस् + त्वा >जघ् स् + त्वा = जघ् + ध्वा = जग्ध्वा, तॄ तीर्त्वा, तृह् तृढ्वा, रुह् रुढ्वा, हिंस् हिंसित्वा, ग्रह् गृहीत्वा इत्यादि। ये रूप भाषा के समस्त इतिहास में व्याप्त हैं।

लेकिन त्वी प्रत्यय ऋग्वेद तक ही सीमित है — कृ कृत्वी, गम् गत्वी, वृज् वृक्त्वी, हा हित्वी, जन् जनित्वी।

त्वाय प्रत्यय भी ऋग्वेद तक ही सीमित है — गम् गत्वाय, घस् जग्ध्वाय, दृश् दृष्ट्वाय, हन् हत्वाय, इत्यादि।

जब धातु उपसर्ग से युक्त होता है तो व्यंजनान्त और दीर्घस्वरान्त धातुओं में य और ह्रस्वरान्त धातुओं में त्य लगता है - आ - अच् आच्य, अभि-वप् अभ्युप्य, अभिक्रम् अभिक्रम्य अभि गॄ अभि-गूर्य, सं-ग्रभ् संगृह्य, नि-चाय् निचाय्य, आ-दा आ-दाय, वि-तॄ वितूर्य, उद् - वह् उदुह्य, सं-गॄ संगीर्य, उप-दा उप-दद्य, सं-भू संभूय, उत् स्था उत्थाय, भज् भाजय विभाज्य इत्यादि।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

उपसर्ग की जगह कहीं-कहीं अव्यय है - पुनर्दाय, मिथस्पृध्य, इत्यादि।

कुछ तो किसी कर्म से संबद्ध है - कर्ण-गृह्य, पाद-गृह्य, हस्त-गृह्य।

त्य वाले रूप - आ-इ एत्य, अभि-जि अभिजित्य, आ-दृ आदृत्य, उप-श्रु उप-श्रुत्य, अरंकृत्य, अख्खली कृत्य, नमस्कृत्य।

कुछ अनुनासिकान्त धातु भी अपने अनुनासिक को हटा कर ह्रस्व स्वरान्त हो जाते हैं और तब उनमें त्य प्रत्यय लगता है - वि-हन् विहत्य, आ-गम् आगत्य, उद्-यम् उद्यत्य।

ऋग्वेद में य त्य वाले रूपों का उच्चारण या त्या होता है।

णमुल् (अम्)

संहिताओं में तो नहीं, पर ब्राह्मण ग्रन्थों में अपने धात्वर्थ से जुड़ी कुछ संज्ञायें द्वितीया विभक्ति अम् के साथ प्रयोग में आने लगती हैं — सम्-आ-लभ् समालंभम्, अभि-सम्-सृ अभिसंसारम्। इनके पहले कोई कर्म हुआ करता है - शाखां समालंभम् (डाल पकड़कर) महानागम् अभिसंसारम् (बड़े साँप की ओर बढ़कर)।

पाणिनि ने तो इन्हें क्रिया के ही अर्थ से संबद्ध माना और 'वार-वार' अर्थ की ओर संकेत किया। आभीक्ष्ण्ये णमुल्। संस्कृत में तो इसके बहुत सुन्दर प्रयोग मिलते हैं। स्मारं स्मारं नमति शिवम्, विप्रदर्शम्, ब्राह्मण भोजम्, इत्यादि।

क्रियार्था क्रिया

(१३४) वेद में कुछ शून्य (क्विप्, क्विन्, ण्वि इत्यादि) प्रत्यय से और कुछ तु ति इ अधि सन् तृ प्रत्ययों से बने हुए कृदन्त शब्द कई कारकों के एकवचन में 'के लिय' अर्थ में प्रयुक्त होते थे। द्वितीया, चतुर्थी, पंचमी-षष्ठी और सप्तमी एकवचन वाले रूप ही देखने में आते हैं।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

द्वितीया

शून्य प्रत्यय वाले शब्दों के द्वितीयान्त रूप ये हैं — समिध् समिधम्, आ-रभ् आरभम्, सं-पृच् संपृचम्, आरुह् आरुहम्, शुभ् शुभम् प्रतृ प्रतिरम्, प्रति-धा प्रतिधाम् प्र-मी प्रमियम्।

तु प्रत्ययान्त - वा ओतु ओतुम्, दा दातु दातुम्, प्रछ् प्रष्टु प्रष्टुम् प्र-भृ प्रभर्तु प्रभर्तुम्, अनु-प्र-वह् अनुप्रवोढुम् अद् अत्तुम्, कृ कर्तुम्, दृश् द्रष्टुम्, याच् याचितुम्, स्पृध् स्पर्धितुम, खन् खनितुम्।

क्रियार्था क्रिया के यही रूप संस्कृत तक जीवित रह पाये। इन रूपों के अन्तिम भाग तुम् को ही संस्कृत व्याकरण में तुमुन् नाम से जाना जाता है।

चतुर्थी

शून्य प्रत्ययान्त - प्र-दा प्रदै, प्र-हि प्रह्ये मी मिये, भू भ्वे भुवे, तृ तिरे, मह् महे, मिह् मिहे, भुज् भुजे, दृश् दृशे, ग्रभ् ग्रभे, इध् इधे, वच् वाचे, व्यध् विधे, स्यन्द् स्यदे।

अस् प्रत्ययान्त-इ इयस् इयसे, अयस् अयसे, चक्ष् चक्षस् चक्षसे, चर् चरस् चरसे, भी भियस् भियसे। इ प्रत्ययान्त - तुज् तुजि तुजये, दृश् दृशि दृशये, मह् महि मह्ये, युध् युधि युधये, सन् सनि सनये, ग्रह् गृहि गृहये, चित् चिति चितये।

ति प्रत्ययान्त - इष् इष्टि इष्टये, पा पीति पीतये, वी वीति वीतये, सन् साति सातये, इ इति इत्यै।

तु प्रत्ययान्त - अद् अत्तु अत्तवे, इ एतु एतवे, वा ओतु ओतवे, एतु एतवै, ओतु ओतवै, गम् गन्तु गन्तवै, पा पातु पातवै।

अधि प्रत्ययान्त - इ इयधि इयध्यै, गम् गमधि गमध्यै, चर् चरधि चरध्यै।

मन् प्रत्ययान्त - त्रा त्रामन् त्रामणे,
वन् प्रत्ययान्त् - तृ तुर्वन् तुर्वणे।

पंचमी - षष्ठी

शून्य प्रत्ययान्त आ-तृद् आतृदः, अव-पद् अवपदः, निमिष् निमिषः

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तु प्रत्ययान्त - इ एतु एतोः, गम् गन्तु गन्तोः

सप्तमी

शून्य प्रत्ययान्त - वि-वस् व्युष् व्युषि, सम् - चक्ष् सं चक्षि, दृश् दृशि।

तृ-प्रत्ययान्त - धृ धर्तृ धर्तरि, विधर्तरि

सन् प्रत्ययान्त - नी नेषन् नेषणि, पृ पर्षन् पर्षणि अभि-भू अभि-भूषन् अभिभूषणि।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

पद-संधि

(१३५) वाक्य के भीतर शब्दरूप, धातुरूप तथा अव्यय आदि अन्यान्य शब्दों के आपस में मिलने से जो पदान्त और पदादि वर्णों में विकार होता है उसे पद-संधि या वाक्यगत संधि कहते हैं।

(क) स्वर-संधि

१. सामान्यतः दो साधारण स्वर, ह्रस्व या दीर्घ, आपस में मिलकर दीर्घ हो जाते हैं — सु + उपायनः सूपायनः, इह + अवसे = इहावसे, रथेन + आ = रथेना।

लेकिन ऋग्वेद में कभी-कभी आ + अ, उ ऊ + उ ऊ की संधि नहीं होती है — मनीषा अग्निः, विळू उत, सु ऊतये, स्वधा अवस्तात्।

दूसरी ओर संहिता में की गयी संधि को भी तोड़कर पढ़ना पड़ता है - चासात् को च आसात् चार्चत को च अर्चत, मापेः को म आपेः, हीन्द्र को हि इन्द्र पढ़ते हैं।

२. अ आ + इ इ = ए, अ आ + उ ऊ = ओ, अ आ + ए ऐ = ऐ, अ आ + ओ औ = औ — आ + इह = एह, पिता +इव = पितेव, उप + इहि = उपेहि, आ + इहि = एहि, चर्म इव उद्भिः = चर्मेवोद्भिः। स्तनयित्नुना आ इहि (पदपाठ) में पहले आ + इहि = एहि, तब स्तनयित्नुना + एहि = स्तनयित्नुनैहि होनी चाहिये थी, लेकिन हुआ स्तनयित्नुनेहि। यही तो वैदिकता है। पाणिनि इसी आधार पर कहते हैं- एङि पररूपम्। इन्द्र आ इहि = इन्द्रेहि (संहिता पाठ)।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

दूसरी ओर, उपसर्ग आ + ऋ = आर् उप ऋच्छति = उपार्च्छति, आ + ऋच्छतु = आर्च्छतु। प्र + इषयुः = प्रैषयुः।

कभी-कभी तो संहितापाठ में सन्धि को रोकने के लिये पूर्ववर्ती स्वर को आनुनासिक बना देते हैं — उपस्था + एका = उपस्थाँ एका। यथा + एषः यथाँ एषः, अक्रत+एमि = अक्रतँ एमि। दो पादों को मिलाते समय ऐसी सन्धि रोकी जाती है।

३. भिन्न स्वर के पहले, इ ई >य्, उ ऊ > व्, लेकिन पढ़ते समय सन्धि को तोड़ ही देते हैं — व्युषाः को वि उषाः, विदथेष्वञ्जन् को विदथेषु अञ्जन् पढ़ा जाता है। विज्ञातृ + एतत् = विज्ञात्रेतत् एक ही उदाहरण शतपथ ब्राह्मण में है। ऋग्वेद में, ह्वयाम्यग्निम् को ह्वयामि अग्निम् ही पढ़ते हैं। भूत्वस्मे को भूतु अस्मे। स्वस्तये को भी सुअस्तये और वरेण्यम् को वरेणिअम् पढ़ते हैं।

४. पुराने मंत्रों में ए ओ के बाद अ लुप्त नहीं होता, क्योंकि अ विवृत है, संवृत नहीं। देवासो अप्तुरः, वाजे अद्रिम् को ज्यों का त्यों पढ़ते हैं। कई जगह जहाँ संहिताकारों ने संधि कर भी दी है और अ का लोप कर दिया है वहाँ अ को ले आना पड़ता है — सूनवे अग्ने को सूनवेऽग्ने लिखा है, पर सूनवे अग्ने ही पढ़ना पड़ता है। मृळीके अस्य सुमतौ स्याम। ठीक इसके उल्टे, सो अर्यः में अ को रहने दिया है, लेकिन पढ़ना पड़ता है - सोऽर्यः।

जब ए ओ के बाद अ का उच्चारण होता है तब ए ओ का उच्चारण ह्रस्व हो जाता है। यो अहिम् में यो का ओकार ह्रस्व है। यच्छुभयन्ते अञ्जिभिः में एकार ह्रस्व है।

वेद का एक सामान्य नियम है कि यदि दो स्वर लगातार आते है तो पहले दीर्घ का उच्चारण ह्रस्व हो जाता है - मापेः = मा अपेः > म आपेः, वाज्यक्षः = वाजी अक्षः > वाजि अक्षः, देव्युद्वतः = देवी उद्वतः > देवि उद्वतः, देव्यायती = देवी आयती > देवि आयती।

५. स्वरों के पहले ए ओ क्रमशः अय् अव् हो जाता है। लेकिन तब य् लुप्त हो जाता है अग्ने + इह = अग्नय् इह > अग्न इह। ते ओजसा

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

= त ओजसा। व् केवल उ ऊ के पहले लुप्त होता है- वायो उक्थेभिः = वायव् उक्थेभिः > वाय उक्थेभिः। लेकिन वायो आयाहि = वायव् आयाहि > वायवायाहि। उरूणसौ + असुतृपौ + उदुम्बलौ = उरुणसावसुतृषा उदुम्बलौ। ऐ औ वाले य् व् की भी यही गति होती है।

य् व् के लोप होने पर दो स्वर आमने समाने आ जाते हैं। वेद में तब फिर संधि हो जाती है - वै + असौ वाय् असौ = वा असौ > वासौ। कहीं-कहीं तो अलग लिखकर भी संधि से पढ़ते हैं - ते इन्द्र = तय् इन्द्र त इन्द्र को तेन्द्र पढ़ते हैं।

द्विवचन वाले ई ऊ ए को प्रगृह्य कहते हैं। उनकी सन्धि अगले स्वर से नहीं होती। अमी का ई भी प्रगृह्य है। कुछ एकाक्षर निपात भी प्रगृह्य हैं। दूर से किसी को पुकारने पर अन्तिम स्वर का प्लुत उच्चारण होता है। वह भी प्रगृह्य है। उसकी सन्धि अगले स्वर से नहीं होती है।

व्यञ्जन संधि

वाक्य में केवल निम्नलिखित आठ व्यञ्जन ही शब्दों के अन्त में होते है — क् ट् त् प् ङ् न् म् विसर्ग।

१ क् ट् त् प्

स्वरों, अन्तःस्थों और घोष स्पर्शों के पहले घोष ग् ड् द् ब् हो जाते हैं — अर्वाक् + राधः = अर्वाग्राधः, षट् + उर्वीः = षडुर्वीः (षळुर्वीः), गमत् + वाजेभिः = गमद्वाजेभिः, त्रिष्टुप् + गायत्री = त्रिष्टुब्गायत्री।

अनुनासिक के पहले ङ् ण् न् म् हो जाते हैं - प्रणक् + मर्त्यस्य = प्रणङ्मर्त्यस्य, विराट् + मित्रावरुणयोः = विराण्मित्रावरुणयोः, त्रिककुप् + निवर्तत् = त्रिककुम् निवर्तत्।

ह के पहले घोष ग् ड् द् ब् तो हो ही जाता है, ह भी इनके आगे क्रमशः घ ढ ध भ हो जाता है - सध्यक् + हिता = सध्यग्घिता, अवाट् + हव्यानि = अवाड्ढव्यानि, सीदत् + होता = सीदद्धोता। संस्कृत में वह परिवर्तन वैकल्पिक है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

२ केवल त्

च छ के पहले च् तथा ज झ के पहले ज् हो जाता है - तत् + चक्षुः = तच्चक्षुः, यातयत् + जनः = यातयज्जनः।

ल के पहले ल् हो जाता है - तत् + लयः = तल्लयः।

श के पहले च् होकर श को ही छ बना देत है - रोहित् + श्यावा = रोहिच्छ्यावा, यत् + शक्रवामः = यच्-छक्रवामः।

३ केवल ङ्

श के पहले एक क् घुसा लेता है - प्राङ् + शेते = प्राङ्क्शेते।

४. ह्रस्व स्वर के बाद वाला ङ् न्

स्वर के पहले दुहरा जाता है - अहन् + अहिम् = अहन्नहिम् कीदृङ् + इन्द्रः कीदृङ्ङिन्द्रः।

५. केवल न्

ज के पहले ञ् हो जाता है - तान् + जनान् = ताञ्जनान्।

ल के पहले लँ् हो जाता है - जिगीवान् + लक्षम् = जिगीवालँ् लक्षम्।

च और त के पहले अनुस्वार हो जाता है, पर बीच में क्रमशः श् और स् चला आता है - तान् + च = तांश्च, तान् + तान् = तांस्तान्।

श के पहले ञ् हो जाता है, पर बीच में एक त् के आ जाने से और इसके च् में बदल जाने से श भी छ हो जाता है - जनान् + श्यावाः > जनाञ्च् छ्यावाः = जनाञ्छयावः। अमन्यमानान् + शर्वा = अमन्यमानाञ्छर्वा, अविन्दन् + शिश्रियानम् = अविन्दञ्छिश्रियानम्।

न् और स के बीच में भी एक त् घुस आता है - अहन् + सहसा = अहन्त्सहसा। संस्कृत में यह नियम वैकल्पिक है।

६. स्वर के पहले

आन् आँ बन जाता है - महान् + इन्द्रः = महाँ इन्द्रः, देवान् + एह = देवाँ एह। प्रायः अन्तःस्थ के पहले भी स्ववान् + यातु = स्ववाँ यातु।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

ईन् ऊन् ऋन् क्रमशः ईरँ, ऊँर्, ॠँर् हो जाता है — परिधीन् + अति = परिधीँरति, कवीन् + इच्छामि = कवीँरिच्छामि, अभिशून् + इव = अभिशूँरिव, नॄन् + अभि = नॄँरभि। बाद वाले मंत्रों में ऐसा नहीं होता - एतावान् अस्य महिमा।

७. म्

व्यंजन के पहले अनुस्वार हो जाता है - होतारम् + रत्न धातमम् होतारं रत्नधातमम्। कहीं-कहीं स्वर के पहले लुप्त हो जाता है, और तब स्वर संधि भी हो जाती है - राष्ट्रम् इह = राष्ट्रेह।

८. विसर्ग

च छ के पहले श्, ट ठ के पहले ष्, तथा त थ के पहले स् हो जाता है - देवाः + चकृम = देवाश्चकृम, यः + ते = यस्ते। कभी-कभी प के पहले भी स् हो जाता है - सहसः पुत्रम् = सहसस्पुत्रम्। लेकिन स के पहले विसर्ग ही रह जाता है - पर्जन्यः स्तनयन्।

यदि अ आ से भिन्न स्वर के बाद है, तो घोष वर्ण के पहले र् हो जाता है - अग्निः + होता = अग्निर्होता, परिभूः + असि = परिभूरसि, पूर्वेभिः ऋषिभिः = पूर्वेभिर्ऋषिभिः।

आः का विसर्ग घोष वर्ण के पहले लुप्त हो जाता है = सुताः + इमे = सुता इमे।

अः का विसर्ग अ छोड़कर अन्य स्वर के पहले लुप्त हो जाता है - ख्यः + आ = ख्य आ।

अः घोष व्यंजनों के पहले ओ हो जाता है - देवः + देवेभिः = दवो देवेभिः। अ के पहले भी ओ हो जाता है, लेकिन तब संहिताकारों ने अ को ही हटा दिया है - नः + अति को नोऽति लिखते हैं, लेकिन पढ़ते है नो अति ही।

प्रातः पितः आदि में विसर्ग वास्तव में र् है। घोष वर्णो के पहले यह र् ही रहता है - प्रातः + अग्नि = प्रातरग्निः।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

र् अगले र के कारण लुप्त हो जाता है और उसका पूर्ववर्ती ह्रस्व स्वर दीर्घ हो जाता है- पुनः + रूपाणि = पुना रूपाणि।

सः और एषः का विसर्ग सर्वत्र लुप्त हो जाता है। वाक्य के अन्त में ज्यों का त्यों रहता है, लेकिन अ के पहले सो एषो होकर अ को ही खा जाता है - स वनानि, एष ताम्, चक्र एषः। मन्त्रपाठ में सो एषो के बाद वाला लुप्त अ उच्चरित हो ही जाता है - सोऽपः सो अपः, एषोऽसुरः = एषो असुरः।

वेद में विसर्ग रहित स की सन्धि भी हो जाती है - स अस्मै = सास्मै, स इद् = सेद्। संस्कृत में भी ऐसे कुछ उदाहरण हैं - सैष दाशरथी रामः।

कभी-कभी सः का विसर्ग रह भी जाता है- सः पलिक्नीः, सस्तव।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

कारक

(१३६) शब्दों के वाक्य में प्रयोग के कुछ सामान्य नियम हैं। वाक्य का स्वरूप है - कर्ता + क्रिया। इसलिये कहते भी हैं - एकतिङ् वाक्यम् । क्रिया यदि सकर्मक है तो बीच में एक कर्म भी आ बैठता है। आवश्यकतानुसार, अन्य कारक भी साथ लग जाते हैं - विशः क्षत्रियाय बलि हरन्ति (किसान राजा को कर देते हैं)। अपने महत्त्व के अनुसार कोई भी शब्द वाक्य के आदि में आजाता है और कर्ता को आगे धकेल देता है - प्रयाजैर्वै देवा स्वर्ग लोकमायन्। कभी क्रिया से ही वाक्य आरंभ हो जाता है — यान्ति वा आप एत्यादित्य एति चन्द्रमा यन्ति नक्षत्राणि।

उपसर्ग क्रिया के पहले रहता है। वेद में तो आगे पीछे कहीं भी रह सकता है, कुछ हटकर भी- देव आयाति। जयेम सं युधि। आ सायकं मघवा दत्त।

वचन के वारे में कोई विशेष नियम नहीं है, पर पूरी जाति का बोध कराने के लिये एक वचन का भी प्रयोग हो सकता है, बहुवचन का भी द्विवचन प्रायः स्त्री-पुरुष के जोड़े के लिये आता है- पितरौ = पिता माता, पुत्रौ = बेटा बेटी। द्यावा = द्यावा पृथिवी, मित्रा = मित्रा वरुणा, द्यावः = स्वर्ग, अन्तरिक्ष और पृथ्वी।

जहाँ एक ही क्रिया अनेक पुरुषों से जुड़ी होती है वहाँ उत्तम, मध्यम और प्रथम पुरुष की वरीयता का क्रम होना चाहिये - अहं च त्वं च सं युज्याव। यूयं वयं चाश्याम। अपवाद भी है।

उद्देश्य और विधेय के विशेषण अपने-अपने विशेष्य के अनुसार चलते हैं - ये तुषाः सा त्वक्। संस्कृत में भी इसी तरह है - शैत्यं हि यत्सा प्रकृतिर्जलस्य।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

वेद में त्वम् ही सबके लिये प्रयुक्त होता है राजा नौकर, देवता इत्यादि। लेकिन जब समाज में ऊँचे-नीचे का भाव उभरने लगा तो ऊँचे शब्द की खोज शुरु हुई। शतपथ ब्राह्मण में पहली बार भवन् को सबल रूप देकर भवान् (आप) का सूत्रपात हुआ। इसके पहले अत्र तत्र जोड़कर इसे और ऊपर उठाया। भवान् का संबोधन रूप भवस् सिकुड़कर भोः हो गया।

प्रथम पुरुष के सर्वनामों में अयम् निकटवर्ती है, असौ काफी दूर - अयमग्निरसौ सूर्यः। कहते हैं, एषः अयम् से भी निकट है, सः परोक्ष है।

कारक तो वास्तव में दो ही है - कर्ता और कर्म। कर्ता = करने वाला, कर्म=किया जाने वाला। लेकिन ये ही भाव अनेक रूप में प्रकट हुए हैं। संस्कृत में आठ कारक मानते हैं। सभी कारकों में कर्ता के साथ कोई शर्त नहीं है (स्वतंत्रः कर्ता)। अन्य कारकों के साथ तो शर्त लगा हुआ है - कर्तुरीप्सित तमं कर्म, साधकतमं कारणम्, कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्, ध्रुवमपायेऽपादानम्, आधारोऽधिकरणम्। संबंध नाम से कोई कारक तो नहीं है, पर संबंध दिखाने वाले रूप तो हैं ही।

प्रथमा आदि विभक्तियाँ कर्ता आदि कारकों से जुड़ी हुई तो हैं ही, अन्य शब्द भी विभक्तियों के कारण हो सकते हैं। उन्हें उपपद कहते हैं।

(१३७) कर्ता

कर्तृवाच्य में कर्ता में प्रथमा विभक्ति होती है - अग्निर्जायते। वाक्य के विधेय भाग में भी प्रथमा विभक्ति वाला पद हो सकता है पर वह क्रिया के साथ छेड़-छाड़ नहीं करता - त्वं हि रत्नधा असि। शिवासः सन्तो अशिवा अभूवन्।

कर्म वाच्य में तो कर्म ही प्रथमा विभक्ति धारण करता है - त्वमुच्य से पिता।

कभी तो कर्ता की जगह संबोधन का प्रयोग कर देते हैं, लेकिन क्रिया द्विवचन की होती है— इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पते = इन्द्रश्च बृहस्पतिश्च सोमं पिबताम् (युवां सोमं पिबतम्)।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

(१३८) कर्म

कर्तृवाच्य में सकर्मक क्रिया का कर्म द्वितीया विभक्ति लेता है - अग्निमीळे पुरोहितम्। ह्वयामि देवं सवितारम्।

अकर्मक क्रिया का लक्ष्य भी द्वितीया विभक्ति लेता है — यमं ह यज्ञो गच्छति। इन्द्रं स्तोमाश्चरन्ति सभामेति कितवः।

देश और काल की अवधि में द्वितीया विभक्ति लगती है - शतं जीव शरदो वर्धमानः। स संवत्सरमतिष्ठत्। स भूमिं विश्वतो वृत्वा अत्यतिष्ठद् दशांगुलम्। पतसि योजना पुरु। सर्वानृतून् वर्षति।

कुछ द्वितीयान्त पद तो क्रियात्मक विशेषण हैं - नक्तम् (रात को), कामम् (इच्छानुसार), नाम (नाम से), चिरम् (देरतक), क्षिप्रम् (जल्दी), अनुकामम् (इच्छानुसार), यावज्जीवम् (जीवन भर)।

सन्नन्त क्रिया से बने शब्दों के साथ द्वितीया विभक्ति वाले शब्दों का प्रयोग होता है - पाप्मानमपजिघांसुः = पाप को दूर करने वाला। वेद में तो अन्य शब्दों के साथ भी-यं यज्ञं परिभूरसि, वत्सांश्च घातुको वृकः।

कुछ कर्म प्रवचनीय कहे जाने वाले उपसर्गों तथा अन्यान्य अव्यओं के साथ भी द्वितीयान्त पदों का प्रयोग होता है - अभि, प्रति, तिरस्, अन्तरा, अभितः, उपरि, विना, इत्यादि।

जैसे कर्ता के साथ विधेय भाग में प्रथमान्त पद होते हैं वैसे कर्म के साथ भी द्वितीयान्त पद होते हैं- श्वानं वस्तो बोधयितारमब्रवीत्। अग्निं मन्ये पितरम्। अग्निं होतारं प्रवृणे।

कभी तो ऐसा लगता है कि दो वाक्य मिलकर एक हो गये हैं, लेकिन दोनों कर्म ज्यों के त्यों चले आये हैं - त्वां पृच्छामि + परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि = पृच्छामि त्वां परमन्तं पृथिव्याः। अपो याचामि + भंषजं याचामि = अपो याचामि भेषजम्। संस्कृत में दूसरे कर्म को अकथित कहते हैं।

सामान्य क्रिया का कर्ता प्रेरणार्थक का कर्म बन जाता है - यजमानो वक्ति - यजमानं वाचयति, सपत्नी गच्छति > सपत्नीं गमयामसि। यजमानः सुवर्गं लोकं गच्छति > यजमानं सुवर्गं लोकं गमयति।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

ब्राह्मण साहित्य में कुछ क्रियाओं के साथ प्रथमा विभक्ति के साथ तृतीया विभक्ति आने लगती है - वरुणस्ता अग्रहीत् > वरुणेन ता अग्राहयत्।

संस्कृत में जानना, खाना, लिखना, पढ़ना के प्रेरणार्थक रूपों के साथ द्वितीया विभक्ति लगती है, अन्य के साथ तृतीया - पुत्रो वेदं पठति पिता पुत्रं वेदं पाठयति, लेकिन शिष्य ओदनं पचति गुरुः शिष्येणौदनं पाचयति।

(१३९) करण

क्रिया के साधन में तृतीया विभक्ति लगती है - अहन् वृत्रमिन्द्रो वज्रेण। लेकिन साधन के साथ अन्यान्य भाव भी सम्मिलित हो जाते हैं — वयमिन्द्रेण सनुयाम वाजम्। 'साथ' का भाव भी व्यक्त होता है - देवो देवेभिरागमत्। 'से' का भाव तो प्रसिद्ध ही है - दिवा यान्ति मरुतो भूम्याग्निरयं वातो अन्तरिक्षेण याति।

जहाँ द्वितीयान्त का अनुवाद 'भर' से होता है, वहाँ तृतीयान्त का अनुवाद 'भर में' से-मासम् = महीने भर, मासेन = महीने भर में।

तृतीयान्त का प्रयोग किसी अन्य शब्द के कारण भी होता है - तेन युध्यति = उससे लड़ता है। पशुना चरति = पशु के साथ चलता है। किमृचा करिष्यति = ऋचा से क्या करेगा? सह, साकम् आदि के साथ तृतीया का प्रयोग तो संस्कृत तक चला आया है।

(१४०) सम्प्रदान

सम्प्रदान का मुख्य अर्थ है 'के लिये'। धा दा क्रिया के साथ इसका विशेष सहयोग है - दधाति रत्नं विधते = पुजारी को रत्न देता है। अग्निभ्यः पशुमालभते = अग्नि के लिये पशु को मारता है।

बहुत सी अन्य क्रियायें चतुर्थी से जुड़ी हैं - श्रदस्मै धत्त = इस पर श्रद्धा रखो। देवेभ्यो हव्यं वहति = देवताओं को हवि ले जाता है। विशः क्षत्रियाय बलिं हरति = किसान राजा को कर देता है। अथ को मह्यं भागो भविष्यति।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

नमः स्वस्ति स्वाहा स्वधा आदि के साथ चतुर्थी तो विख्यात ही है। मदाय सोमः वालं भक्षाय। कहीं द्वितीया की जगह चतुर्थी-वृत्राय (= वृत्रं) हन्तवे।

(१४१) अपादान

अपादान के रूप 'से' के प्रतिनिधि हैं - असतः सदजायत = असत् से सत् हुआ। भुज्युं समुद्रादूहथुः = भुज्यु को समुद्र से ले आये। शुनःशेपं यूपादमुंचः = शुनः शेप को खूँटे से छुड़ाया। यजुस्तस्मादजायत = उससे यजुस् पैदा हुआ।

डरना, बचाना आदि क्रिया पंचमी से जुड़ी हुई है - इन्द्रस्य वज्राद्बिभेत् = इन्द्र के वज्र से डरा। तस्मात् त्रायस्व = उससे बचाओ।

तुलना में इसी का प्रयोग करते हैं - विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः = इन्द्र सब से बड़ा है। ब्रह्म हि पूर्वं क्षत्रात् = ब्रह्म क्षत्र से पहले है।

(१४२) संबन्ध

षष्ठी विभक्ति का हिन्दी प्रतिनिधि 'का' है। यह स्वामित्व या अधिकार बताता है - वेः पर्णम् = चिड़िया का पंख। देवानां दूतः = देवों का दूत। देवानां सख्यम् = देवताओं की दोस्ती।

किसी विशेषण के साथ तो केवल संबन्ध दीखता है - रुद्रो वै क्रूरो देवानाम् = रुद्र देवताओं में सबसे चमकीला है। मित्रो वै शिवो देवानाम् = देवताओं में मित्र सबसे सौम्य है।

वाक्य की ऊपरी सतह पर जहाँ षष्ठी विभक्ति है, नीचली सतह पर वहाँ कर्ता या कर्म होता है -

उषा व्युच्छति > उषसो व्युष्टिः

वाजिनं युनक्ति > वाजिनो योगः

कहीं-कहीं तो सीधे क्रियाओं से ही षष्ठी का संबन्ध होता है - अस्माकमस्तु केवलः। तस्य शतं जाया बभूवुः। राजन्तमध्वराणाम्।

वास्तव में षष्ठी विभक्ति किसी परसर्ग का प्रतिनिधि है - मनोर्ह वा

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

ऋषभ आस = कहते हैं, मनु के पास एक बैल था। संवत्सरस्य द्विः = साल भर में दो बार।

(१४३) अधिकरण

'में, पर' के भाव को व्यक्त करने के लिये सप्तमी विभक्ति लगती है - दिवि = स्वर्ग में, पर्वते = पहाड़ पर, युधि = युद्ध में, इत्यादि। अस्य सुमतौ स्याम। वयं स्याम वरुणे अनागाः = हम वरुण के प्रति अपराधी न हों। उषसि = सुबह में, मासि मासि = हर महीने। स इद्देवेषु गच्छति = वही देवताओं के पास जाता है। सप्तमी का भाव तो उपसर्ग से भी व्यक्त हो जाता है - सीदत आ बर्हिः = कुश पर बैठो।

विश्वमधागायुधमिद्धे अग्नौ = आग के प्रज्वलित होने पर सब आयुध जल गये। यन्मरुतो मदथ सूर्ये उदिते = हे मरुत! जब सूर्य के उगने पर खुश होते हो। यद् हते कुर्यात्तत्कुरुत = मरने पर जो करते हैं वह करो। तस्यालब्धस्य सावागपचक्राम = उसके मारे जाने पर वह वाक् चली गयी।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

समास

(१४४) दो शब्दों के मिलने को समास कहते हैं। वेद में समास की पहचान है कि पूर्वर्ती पद अपनी विभक्ति खो देता है और दो पदों का उदात्त किसी एक पर चला आता है। इन दोनों नियमों के अपवाद भी हैं।

समास मुख्य रूप से दो ही हैं - द्वन्द्व और तत्पुरुष। पर तत्पुरुष में ही यदि दोनों पद एक विभक्ति वाले हैं, एक विशेषण है और अगला विशेष्य तो वे कर्मधारय कहलाते हैं। यदि कर्मधारय का ही पहला पद संख्या है तो वह द्विगु कहलाता है। वही कर्मधारय यदि किसी विशेष्य का विशेषण बन जाता है तो वह बहुव्रीहि कहलाता है। कर्मधारय ही अपने पूर्वपद के अनुसार पुनः अनेक नाम वाला हो जाता है, जिसका उल्लेख आगे करेंगे। कुछ समास वाक्य में किसी पद के दुहराने से होते हैं, जिसमें उदात्त किसी एक पर आ जाता है। कभी किसी दो पदों के आपस में सट जाने से समास बन जाते हैं।

सामान्यतः द्वन्द्व और तत्पुरुष का अन्तिम पद अपना लिंग कायम रखता है। ऐसा नहीं होने पर प्रायः पूरे समास पर नपुंसक लिंग की छाया आ जाती है। समास का वचन उसके अर्थ के अनुरूप होता है।

(१४५) द्वन्द्व

'और' द्वारा जुड़े हुए पद द्वन्द्व कहलाते हैं (चार्थे द्वन्द्वः)।

वेद में, समस्त होने पर भी प्रायः दोनों पद विभक्ति धारण करते हैं। इनके दोनों पद पर उदात्त भी होता है। ये देवता द्वन्द्व कहलाते हैं- मित्रा वरुण, मातरा-पितरा, द्यावा पृथिवी।

ऋग्वेद में तो दोनों पद अलग-अलग भी रहते हैं - नक्ता............उषासा।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अन्य कारकों में भी ऐसे पद अपनी अलग-अलग विभक्ति रखते हैं- मित्रयोर्वरुणयो:। लेकिन बाद में विभक्ति अन्तिम पद पर आने लगी-मित्रा वरुणयो:, मित्रा-वरुणाभ्याम्। फिर उदात्त भी समास के अन्तिम अक्षर पर आ बैठा - सूर्या - चन्द्रमसा। अन्त में, पूर्वपद से विभक्ति भी हट गयी - इन्द्रवायू, दक्ष-क्रतू।

कुछ द्वन्द्व बहुवचन रूप वाले हैं - अहोरात्राणि (संस्कृत में अहोरात्र:), अजावय:, भद्रपापा:। बाद में तो एकवचन वाले रूप आने लगे जो नपुंसक होते थे - इष्टापूर्तम्, कृताकृतम्, केशश्मश्रु, भद्रपापम्।

अन्त में एक के द्विवचन रूप से दो या जोड़े का बोध होने लगा - द्यावा = द्यावापृथिवी, पितरा = मातापितरा।

(१४६) तत्पुरुष

तत्पुरुष का पहला पद प्रथमा विभक्ति छोड़कर अन्य विभक्ति वाला होता है - कष्टं श्रित: = कष्टश्रित:, अग्निना दग्ध: = अग्नि दग्ध:, राज्ञ: पुत्र: राजपुत्र:।

वेद में, अन्तिम पद प्राय: स्वतंत्र रूप से प्रयुक्त नहीं होते - हविरद्, गोघ्न: इत्यादि।

कुछ समास में तो पूर्वपद की विभक्ति लुप्त नहीं होती - धनंजय, वाचा स्तेन:, दस्यवे वृक:, दिवीजा, ब्रह्मणस्पति, दिवियज्, अप्सु सद्। ये समास अलुक् कहलाते हैं।

(१४७) कर्मधारय

विशेषण पूर्वपद वाला कर्मधारय (कृष्ण: काक: = कृष्णकाक:) संहिता में बहुत कम हैं। जैसे - कृष्णशकुनि:, चन्द्र-मा:, महाग्राम:, पूर्वाह्ण:।

कुछ पूर्वपद विशेषण तो नहीं हैं, लेकिन उत्तरपद से इनकी तुलना हो सकती है- पुरुष-मृग: (पुरुष: मृग इव)। लोक में यह उपमित कहलाता है।

उपमान और उपमेय का समास तो चल पड़ा था, पर उपमान और सामान्य वचन (घनश्याम) का समास शुरु नहीं हुआ था।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

द्विगु समास वेद में इने गिने हैं - दशांगुल, इत्यादि।

बहुव्रीहि

कर्मधारय जब दूसरे किसी शब्द का विशेषण बन जाते हैं तो वे बहुव्रीहि कहलाते हैं - बहुः व्रीहिः (कर्मधारय) : बहुः व्रीहिः यत्र स बहुव्रीहिः (ग्राम)। इन्द्रस्य शत्रुः = इन्द्र-शत्रुः (तत्पुरुष)। यहाँ उदात्त श पर है। इन्द्रः शत्रुः यस्य स इन्द्रशत्रुः (वृत्रः) — उदात्त इ पर है। यह बहुव्रीहि है। राज्ञः पुत्रः = राजपुत्रः (तत्पुरुष)। राजा पुत्रःयस्य स राजपुत्रः (बहुव्रीहि)। बहुव्रीहि समास स्वयं विशेषण बन जाता है।

कुछ शब्दों का अन्तिम स्वर बदल जाता है — सखि लेकिन कवा-सख (गरीब दोस्त वाला), गन्ध, लेकिन धूम-गन्धिः (धूएँ की गन्ध वाला)।

कुछ बहुव्रीहि उपसर्ग पूर्वपद होते हैं - अतिरात्र (रात भर चलने वाला), आ-पथि (रास्ते पर पड़ा हुआ)। अनुकाम (इच्छानुसार होने वाला)।

कुछ शतृपूर्वपद कर्म धारय हैं - धारयत्कवि, भरद्वाज, जमदग्नि, (= गमदग्नि)। संस्कृत में जयद्रथ आदि।

कुछ समास तो दो पदों के आपस में सट जाने से बने हैं - ये यजामहे, अहमुत्तरः, मम सत्य, मां पश्य, अहं पूर्व इत्यादि।

कुछ समास में शब्द दुहराये हुए है। उन्हें समास मानने का एक कारण है कि अगला पद अनुदात्त हो जाता है - दिवे दिवे, अहरहः, गृहे-गृहे। पद पाठ में इन्हें अवग्रह से अलग करते हैं। एकाध वार तो क्रिया भी दुहरा जाती है - पिब-पिब। प्रेहि-प्रेहि में दोनों पर उदात्त है, क्योंकि इसे समास नहीं माना है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

लकारार्थ

(१५०) संस्कृत में वर्तमान काल के लिये लट् ही है। पर यह इतना व्यापक है कि एक ओर भूत को छूता है, दूसरी ओर भविष्य को (वर्तमान सामीप्ये वर्तमानवद्वा)। कदागतः? अयमागच्छामि (कब आये? आ ही रहा दूँ। अभी अभी आया हूँ)। कदा गमिष्यसि? एष गच्छामि (जा ही रहा हूँ। अभी-अभी जाऊँगा)। इसलिये लट् प्रायः वैसी घटना को बताता है जो पहले शुरु हुआ और अभी भी चल रहा है, आगे भी चलेगा। संस्कृत तक आते-आते तो लट् + स्म = लङ्, लट् + पुरा, यावत् = लृट्।

वेद में तो लट् कभी-कभी लृट् का काम करता है - अहमपि हन्मीति होवाच = मैं भी मारूँगा- ऐसा कहा। कहीं लङ् का काम करता है - दानुः शये सहवत्सा न धेनुः = दानव वैसे सो रहा था जैसे बछड़े के साथ गाय। त्वष्टा यद् वज्रमवर्तयद् धत्त इन्द्रः = जब त्वष्टा ने वज्र को घुमाया तो इन्द्र ने उसे पकड़ लिया। ऐसा प्रयोग लोक में भी है- हिरण्यको बिले स्वपिति = हिरण्यक बिल में सोता था। संस्कृत में लट् लोट् का भी काम करता है - किं करोमि क्व गच्छामि = क्या करूँ? कहाँ जाऊँ। किमात्मनिर्वादकथामुपेक्षे जायामदोषामुत संत्यजामि।

(१५१) वेद में भूत के लिये चार लकार हैं - लङ्, लुङ्, लिट् तथा लिट्+लङ्।

लङ् तो कहानी का भूतकाल है। ऐसा लगता है कि वर्तमान से इसका कोई संबन्ध ही नहीं है। इसीलिये पाणिनि भी बताते हैं कि इसका संबन्ध आज से नहीं है (अनद्यतने लङ्) - अहन्नहिम्। प्र वक्षणा अभिनत्पर्वतानाम् (वृत्र को मारा। पहाड़ का पेट फाड़ दिया)। न वै त्वमकरोर्यदब्रवम् (जो मैंने कहा वह तुमने नहीं किया)।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

लुङ् को पाणिनि सामान्य भूतकाल मानते हैं (भूते)। इसका संबन्ध वर्तमान से है। यह अपूर्ण भूत है। वह गया है, चला है, खाया है। आसन्न भूत भी कह सकते हैं - प्रति दिवो अदर्शि दुहिता = स्वर्ग की बेटी दिखायी पड़ी है। यस्माद् दुःस्वप्नाद् अभैष्म अप तदुछतु = जिस बुरे सपने का डर है, उसे दूर करे। ज्योग्वा इयमुर्वशी मनुष्येष्ववात्सीत् = मनुष्यों के बीच यह उर्वशी बहुत दिनों तक रह गयी है। लङ् से इसका अन्तर कहीं-कहीं साफ दिखायी देता है- यज्ञो देवेभ्य उदक्रामत (लङ्) = यज्ञ देवताओं के पास से चला गया। ते देवा अब्रुवन् - यज्ञो न उदक्रमीत् (लुङ्) = वे देवता गण बोले - यज्ञ हमारे पास से चला गया है। तां यदपृच्छन् त्साब्रवीत् - अद्य अमृत = उससे जब पूछा, तो वह बोली - आज मरी है। तं देवा अब्रुवन् - महान् वा अयमभूद् यो वृत्रमवधीद् इति = उससे देवताओं ने कहा - यह महान् है जिसने वृत्र को मारा है। संक्षेप में - लङ् = गया, लुङ् = गया है।

लिट् वैसे भूतकाल को बताता है जो पहले कभी शुरु हुआ और अभी भी चल रहा है, या अभी-अभी खत्म हुआ है। इसलिये कभी तो यह वर्तमान है (जाता है, जा रहा है), लेकिन कभी यह अपूर्ण या आसन्न भूत है (गया है) - क्वेदानीं सूर्यः। कश्चिकेत = अभी सूर्य कहाँ है? कौन जानता है? को बिभाय = कौन डरता है? वने वने शिश्रिये = हर पेड़ पर बैठता है। तनूषु दधिरे = वे पहनते हैं। यः शश्वतो जघान = जो सबों को मारता है। अपां नपातं परि तस्थुरापः = अपां नपात् के चारों ओर जल है।

कुछ लिट् के रूप अपूर्णभूत हैं - यत्सीमागश्चकृमा तत्सुमृळतु = जो पाप हमने किये हैं उसे माँफ करें। उवास उषाः = उषा ने प्रकाश फैलाया है। किमाग आस वरुण=हे वरुण, क्या पाप हुआ है?

कभी तो यह भूत में ही सिमट कर रह जाता है और वर्तमान की ओर झांकता भी नहीं - इन्द्रश्च यद्युयुधाते अहिश्च............मघवा विजिग्ये = जब इन्द्र और वृत्र लड़ रहे थे ...., तो इन्द्र जीत गये। पाणिनि ने जो 'परोक्षे लिट्' कहा, उसके आधार ऐसे ही वाक्य हो सकते हैं। उनके इस निर्देश के कारण लौकिक संस्कृत में लिट् का प्रयोग प्रथम पुरुष में सिमट कर रह गया।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

ब्राह्मण साहित्य में तो लङ् और लुङ् आपस में घुल-मिल जाते हैं। लौकिक संस्कृत में लङ्, लुङ् और लिट् सामान्य रूप से भूतकाल हो जाते हैं। कवियों ने भेद कायम रखने की कभी कोशिश नहीं की और अपनी सुविधा के अनुसार उनका प्रयोग करते रहे। यह सच है कि लिट् का प्रयोग उत्तम और मध्यम पुरुष में बन्द हो गया।

लिट् + लङ् तो विशुद्ध भूत काल है। इसे पूर्णभूत (गया था, चला था, खग्या था) कह सकते हैं (चला था और चलना बहुत पहले समाप्त भी हो गया) यह लगभग लङ् और लुङ् के भी समान है और भेद बताना कठिन है। अत्रा समुद्र आ गूळहमा सूर्यमजभर्तन = तुम समुद्र में छिपे सूर्य को ले आये। हिरण्ययीममतिं यामशिश्रेत् = जिस स्वर्णमयी अमति को फैलाया।

गमयां चकार जैसे लिट् का प्रयोग तो अथर्ववेद में शुरू हो गया था। पर इसका पूरा विकास नहीं हो पाया। लौकिक संस्कृत कवियों ने इसे अपनाने की कोशिश की, पर यह लोकप्रिय नहीं हो पाया।

(१५२) लृट्

वेद में लृट् का आरंभ ही हुआ था। भविष्य का भाव कभी लट् से प्रकट हो जाता था, कभी लेट् से। इसलिये भाषा के इतिहास में बहुत दिनों तक इसकी जरूरत ही न पड़ी।

इसके रूप निकले भी कहाँ से?-स्-और इष् वाले लुङ् के गर्भ से इसकी उत्पत्ति हुई। स् और इष् को-य से आगे बढ़ाकर और लट् की विभक्ति जोड़कर लृट् के रूप बने।

वेद में थोड़े ही उदाहरण हैं - तस्य विभागं वक्ष्यामः। स्तविष्यामि त्वामहम्। किंस्विद् वक्ष्यामि किमु नू मनिष्ये।

लृट् का एकाध प्रयोग तो आज्ञार्थक भी है। यही प्रयोग कालिदास ने भी दिखाया है - मार्गं तावच्छृणु ....सन्देशं तदनु श्रोष्यसि।

चुंकि लृट् का जन्म लुङ् से हुआ है इसलिये लृट् से ऐतिहासिक घटना का भी उल्लेख किया जाता है। पाणिनि ने इसकी ओर इशारा भी

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

किया है (अभिज्ञावचने लृट्)। पर गौरांग महाप्रभु पार्जिटर साहब ने इसे गलत समझा। पुराणों में राजाओं की वंशावली में लृट् का प्रयोग देखकर इसे 'पवित्र धोखेवाजी' बतायी। वास्तव में, चन्द्रगुप्तो भविष्यति = चन्द्रगुप्त हुआ। (यह कहने का पौराणिक ढंग था)। संस्कृत के और उदाहरण हैं - स्मरसि कृष्ण गोकुले वत्स्यामः (कृष्ण! याद है न कि हमलोग गोकुल में रहते थे)। स्मरसि। भवानमुं हनिष्यति (याद है न कि आपने उसे मारा था)।

(१५३) लुट्

लुट् का प्रयोग वेद में तो नहीं है, ब्राह्मणों में है। वहाँ भी इसका प्रयोग अभी शुरू ही हुआ था - तन्म एकां रात्रिमन्ते शयितासे। जात इ तेऽयं तर्हि पुत्रो भविता = तब एक रात मेरे पास सोओगे। तब यह पुत्र होगा।

यह लकार भी सुदूर भविष्य के लिये होने लगा। 'आज' के साथ इसका संबन्ध नहीं है। इसलिये पाणिनि भी कहते हैं - अनद्यतने लुट्। 'अद्य सभा भविता' कहना गलत है। ब्राह्मण ग्रन्थों में बहुत से आर्ष रूप हैं - श्वो व्रष्टा - इति ब्रूयात् (कल बरसेगा - ऐसा कहे)। यर्हि वाव वो मया अर्थो भविता तर्ह्येव वोऽहं पुनरागन्तास्मि = जब ही तुझे मेरी जरूरत होगी तब मैं तुम्हारे पास आऊँगा। सैवेयमद्यापि प्रतिष्ठा सो एवाप्यतोऽधि भविता = आज यह प्रतिष्ठा है और यही आगे भी होगा। गीता में भी कुछ अच्छे प्रयोग है - नायं भूत्वा भविता वा न भूयः = होकर यह आगे भी कभी नहीं होगा। भवितासि ततः कृती = तभी सफल होगे। भविता और असि को अलग नहीं रखा जाता पर कालिदास ने ऐसा किया है- त्वमसि भविता। संस्कृत में भी लुट् के प्रयोग बहुत लोकप्रिय नहीं हैं।

(१५४) अर्थ

अब अर्थों पर विचार करना चाहिये। अर्थ चार हैं - लेट् लोट् लिङ् और आगम रहित आज्ञार्थक भूत।

पहली नजर में लोट् आज्ञार्थक है, लिङ् इच्छा व्यक्त करता है, और लेट् इन दोनों के बीच में है। लेट् में न लोट् वाली कठोरता है न लिङ्

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

वाली विनयशीलता। लोट् की आज्ञा को मानना ही पड़ेगा, पर लिङ् की इच्छा ठुकरा दी जा सकती है। लेट् का संबन्ध ऐसी क्रियाओं से है जिस पर कर्ता का वश चल सकता है। लेकिन फिर भी वास्तविकता यही है कि लोट् केवल आज्ञा ही नहीं है। यह इच्छा प्रार्थना आदि की ओर खिसक आता है। लिङ् की इच्छा प्रबल हो जाती है और यह विनम्र आज्ञा तक पहुँच सकती है।

रूप के विचार से देखा जाये तो लोट् बहुत से रूपों में आगमरहित लङ् से भिन्न नहीं है। पाणिनि भी कहते हैं - लोटो लङ्वत्। हम जानते हैं कि आगमरहित लङ् और लुङ् आज्ञार्थक होता है। अतः भू धातु का पर० भवतु भवन्तु और भव ही शुद्ध लोट् रूप है, क्योंकि भवताम् भवतम् और भवत तो आगमरहित आज्ञार्थक लङ् है। उत्तमपु० में तो लोट् के अपने रूप हैं नहीं। वे लेट् के हैं।

संस्कृत में तो कोई परेशानी नहीं, क्योंकि आगमरहित आज्ञार्थक लङ् सदा मा के साथ रहते हैं। पर वेद में ऐसा कोई तत्त्व नहीं जो इन्हें अलग-अलग बता सके। अभिप्राय से ही पता चल सकता है कि कहाँ ये लोट् के रूप हैं और कहाँ लङ् के।

वास्तव में, भाषा के इतिहास में आगम रहित आज्ञार्थक लङ्, लुङ् पहले उभरा था, अ आगम को हटा कर, बाद में लेट् उभरा, उसके अन्तिम अक्षर पर दीर्घ स्वर लाकर। लोट् तो बाद में आया और लिङ् तथा आशीर्लिङ् सबसे अन्त में।

लिङ् के उभरते ही लेट् के साय उसकी प्रतियोगिता शुरू हुई। ऋग्वेद में तो लेट् और लिङ् दायें-वायें चलते हैं, यद्यपि लिङ् की हालत कमजोर है। लेकिन बाद में लिङ् लेट् पर हावी होने लगता है और संस्कृत के द्वार तक आते-आते उसे उखाड़ फेंकता है। लेट् अपने उत्तम पु० वाले रूपों को लोट् को सोंप कर चुपचाप विदा हो जाता है।

इस छोटी सी भूमिका के बाद हम सब अर्थों पर अलग-अलग विचार करेंगे। इनके अर्थ विभिन्न पुरुषों से संयोग पर निर्भर करते हैं।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

(१५५) लोट्

लोट् मध्यमपु० में ही आज्ञार्थक है — अहेळमानो बोधि = नाराज न हो। देवाँ इहावह = देवताओं को यहाँ लाओ। अस्य शीर्षाणि छिन्धि = इसके सिर काटो। प्रथम पु० में तो प्रार्थना इच्छा व्यक्त होती है - प्रवामश्नोतु सुष्टुतिः = स्तुति तुम तक पहुँचे। हन्त एको नो वेतु = आओ, हम में से कोई पावे। उत्तमपु० तो इसका अपना है नहीं।

ऋग्वेद में कुछ लट् के रूप लोट् अर्थ वाले लगते हैं — देवाँ आ वक्षि यक्षि च = देवताओं को बुलाओ और पूजो। पर्षि नः पारमंहसः स्वस्ति = हमें सकुशल दुख के उस पर ले चलो।

वास्तव में ये लट् के रूप नहीं हैं। ये लेट् के रूप हैं, लेकिन विभक्ति के पहले अट् आगम नहीं लगा हुआ है (असि - सि) - पृ पर्षि वह् वक्षि यज् यक्षि। शब्दरूप में भी विभक्ति ६ अस् की जगह केवल स् रहता है - दम् + स् = दन् (पतिर्दन् = दम्पतिः)।

(१५६) आगम रहित आज्ञार्थक भूत

उत्तमपु० में तो इन रूपों से कर्ता का इरादा जाहिर होता है। इनके साथ ऐसी क्रियायें हैं जिनका सम्पादन कर्ता के वश में है। विष्णोर्नुकं वीर्याणि प्रवोचम् = इरादा है कि विष्णु की वीरता का गुणगान करूँ। तेन जेष्म धनं धनम् = उससे धन ही धन जीतें।

मध्यम पु० आज्ञार्थक है- पूषन्निह क्रतुं विदः = पूषन् यहाँ बुद्धि दो।

प्रथम पुरुष में आग्रह या प्रार्थना है - अग्निर्जुषत नो गिरः = अग्नि हमारी बात माने। इमा हव्या जुषन्त नः = हमारी हवि स्वीकार करें।

ब्राह्मण साहित्य से इन आज्ञार्थक रूपों के साथ मा आने लगता है और सभी आज्ञायें निषेधार्थक होने लगती हैं - मा वध्यध्वम् = मत मारो। मा बिभीत = न डरे। इन्हीं प्रयोगों को देखकर पाणिनि ने कहा - न माङ्योगे। संस्कृत में तो एकबार है - मा त्वमगमः।

(१५७) लेट्

लौकिक संस्कृत में लोट् का उत्तम पु० वाला रूप वैदिक लेट् की देन है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

उत्तमपु० में कुछ खास ही धातु, जैसे हन् कृ सु ब्रू इत्यादि - लेट् से संबद्ध हैं। कुछ अन्य धातु जैसे जि, तृ, सह, अश्, नश्, विद् शक् इत्यादि - लिङ् से संबद्ध हैं। पहले पर कर्ता का वश चल सकता है, दूसरे पर नहीं। उत्तम पु० में कर्ता का वश चल सकता है, दूसरे पर नहीं। उत्तम पु० कर्ता का इरादा जाहिर है- स्वस्तये वायुमुप ब्रवामहे = कल्याण के लिये वायु से प्रार्थना करने का इरादा है। प्र नु वोचा सुतेषु वाम् = सवन के समय मैं कहूँगा। दक्षिणतो भवा मे - अधा वृत्रा जंघनाव भूरि = हमारे दाहिने रहो। तभी सब दुश्मनों को मारेंगे। जेषाम इन्द्र त्वया युजा = हे इन्द्र, तुम्हारे साथ रहकर हम जीतें। वरं वृणै = वर माँगूँ। सोमं राजानं हनाम = सोम राजा को मारें।

मध्यपु० में आग्रह है - हनो वृत्रं जया अपः = वृत्र को मारो। पानी जीतो। अग्ने श्रृणुहि। देवेभ्यो ब्रवसि = देवताओं को कहो न। पिबाथो अस्मे मधूनि = हमारे साथ तुम दोनों मधु पियो।

प्रथमपु० में इच्छा मात्र है - इमं नः श्रृणवद्धवम् = हमारी पुकार सुने। उरुं न इन्द्रः कृणवदु लोकम् = इन्द्र हमारे लिये विशाल स्थान बनावे। स देवाँ एह वक्षति = वह देवताओं को यहाँ लावे। अग्निमीळे, स उ श्रवत् = अग्नि की स्तुति करता हूँ। वह सुने।

(१५८) लिङ्

लिङ् मुख्य रूप से इच्छा व्यक्त करता है, और वेद में, खासकर ऋग्वेद में तो यह लेट् के साथ हाथ में हाथ मिलाकर चलता है, यद्यपि इसका प्रयोग लेट् की तुलना में बहुत कम है।

उत्तमपु० में तो प्रबल इच्छा व्यक्त होती है - उषस्तमश्यां यशसं रयिम् = हे उषा, मैं यशस्वी धन पाऊँ। विधेम ते स्तोमैः = हम स्तोत्रों से तेरी पूजा करें। वयं स्याम पतयो रयीणाम् = हम धन के पति हों। ओ चित् सखायं सख्या ववृत्याम् = अरे दोस्ती के लिये दोस्त की ओर मुड़ें।

मध्यमपु० के रूपों का कम प्रयोग हुआ है। वहाँ भी केवल प्रार्थना है - आ नो मित्रा वरुण होत्राय ववृत्याः = मित्र और वरुण को हमारे होत्र के लिये लाओ। त्या मे हवमाजगम्यातम् = मेरी पुकार पर आओ।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

प्रथम पु० में तो संभावना व्यक्त होती है - मीढ्वाँ अस्माकं बभूयात् = हम पर दयालु होवे। धीरे-धीरे लिङ् का प्रयोग बढता है और लेट् का घटता है — कस्मै देवाय हविषा विधेम = किस देवता की पूजा हवि से करें। न रिष्येम कदाचन = कभी हमारी हानि न होवे। ब्राह्मण साहित्य में 'सकना' अर्थ जुट गया था। गच्छेत्-जा सकता है।

संस्कृत में आकर तो लिङ् और लोट् इस तरह घुलमिल गये कि एक लिये दूसरे का प्रयोग होने लगा।

(१५९) आशीर्लिङ्

यह मुख्य रूप से ऋग्वेद और अथर्ववेद तक सीमित है तथा इच्छा और प्रार्थना से जुड़ा हुआ है। इसमें गिरगिराने का भाव निहित है, परवशता है, और शायद इसीलिये लिङ् के पहले आशिष् जोड़ा गया है। यो नो द्वेष्ट्यधरः स पदीष्ट = जो हमसे द्वेषकरता है वह नीचे गिरे।

ब्राह्मण में भी इसका प्रयोग ज्यादा नहीं हुआ है, और लौकिक साहित्य में तो नाममात्र का।

(१६०) लृङ्

यह 'यदि - तो' का भाव व्यक्त करता है। संपूर्ण वेद में एक ही वार इसका प्रयोग हुआ है। शुरु में तो एक ओर वर्तमान या भूत और दूसरी ओर लृङ् था। बाद में दोनों ओर लृङ् रहने लगा - वृष्टिरभविष्यच्चेत्सुधान्यम भविष्यत्। अन्त में एक ओर लिङ् और दूसरी ओर लृङ् रहने लगा - यदि न दण्डयेत् - शूले मत्स्यानिवापक्ष्यन् निर्बलान् बलवत्तराः। इसी तरह उसकी सन्ध्या हो गयी।

(१६१) क्रियात्मक विशेषण और अव्यय

वैदिक भाषा के इतिहास में क्रियात्मक विशेषण और अव्यय का प्रयोग बहुत बाद में शुरू हुआ। वास्तव में इनका विकास दो वाक्यों के जोड़ने से हुआ। संक्षेप में उन पर विचार कर लें।

शतृ शानच्

विश्वमन्यः परिचष्टे + एति = विश्वमन्यः परिचक्षाण एति। (दूसरा सबों

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

को देखता हुआ चलता है)। विचाकशीति चन्द्रमा नक्तम् + एति = विचाकशच्चन्द्रमा नक्तमेति (रात को चन्द्रमा चमकता हुआ चलता है)।

क्सु कानच्

वेद में ये दुर्लभ हैं।

निष्ठा

ये क्रियात्मक विशेषण क्रिया का ही काम करते हैं - ततं मे अपस्तदु तायते पुनः (मेरा काम तो हो गया, फिर किया जा रहा है)।

कृत्य

सखा सखिभ्य ईड्यः (दोस्त दोस्त की प्रशंसा करे)। तस्मै देयम् (उसे देना चाहिये)। रिपवो हन्त्वासः (शत्रुओं को मार देना चाहिये)। न ब्राह्मणो हिंसितव्यः (ब्राह्मणों को न मारना चाहिये)।

त्वा ल्यप्

तमोऽगूहत् + उषा अबोधि = गूढ्वी तमोऽज्योतिषा उषा अबोधि (अन्धकार को ढक कर प्रकाश के साथ उषा जगी)। यो अभ्येति + शत्रुं हन्ति = यो हन्ति शत्रुमभीत्य। जो सामने आकर शत्रु को मारता है। निषीद + पिव = पिवा निषद्य (बैठकर पियो)।

तुमुन्

क उपगात् + को विद्वांसमेतत्प्रक्ष्यति = को विद्वांसमुपगात् प्रष्टुमेतत्। भूयो दास्यसि + अर्हसि = भूयो दातुमर्हसि (तुम फिर दे सकते हो)। ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै (हम तुम्हारे उन-उन स्थानों को जाना चाहते हैं)। आ यातं पाराय गन्तवे। (उस पर जाने के लिये दोनों आओ)। कवीं रिच्छामि संदृशे (कवियों को देखना चाहता हूँ)। अग्निं द्वेषो योतवै नो गृणीमसि = अपने द्वेष को दूर करने के लिये अग्नि की स्तुति करता हूँ।

बनावटी क्रियायें

वेद में प्रेरणार्थक क्रिया, नाधातु, सन्नन्त और यङन्त-यङ्लुगन्त सभी हैं। संस्कृत के जानकार उन्हें अच्छी तरह समझ सकते हैं। उनपर विशेष प्रकाश डालना अभीष्ट नहीं।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

उदात्तादिस्वर

(१६२) वैदिक मंत्रों के पाठ में आवाज (स्वर) कभी ऊँची हो जाती है, कभी नीची। ये स्वर (आवाज) तीन तरह के हैं - उदात्त (ऊपर उठा हुआ), अनुदात्त (नीचे गिरा हुआ) तथा स्वरित (बीच का)। सारी वैदिक संहितायें तथा तैत्तिरीय और शतपथ ब्राह्मण स्वरचिह्न से युक्त हैं। तैत्तिरीयारण्यक और बृहदारण्यकोपनिषद् भी स्वरचिह्न से युक्त है।

ऋग्वेद, अथर्ववेद, वाजसनेयिसंहिता तथा तैत्तिरीय संहिता में स्वरचिह्न का एक ढंग है। मैत्रायणी और काठक संहिता में दूसरा ढंग है। शतपथ ब्राह्मण में तीसरा ढंग है। सामवेद का ढंग सबसे अनोखा है।

ऋग्वेद में उदात्त के लिये कोई चिह्न नहीं है। अनुदात्त के लिये अक्षर के नीचे एक लकीर है, और स्वरित के लिये अक्षर के ऊपर एक रेखा - दे॒वस्य॑ में व पर उदात्त है। अ॒ग्निना॑ में ग्नि पर उदात्त है।

उदात्त के बाद स्वरित का चिह्न देकर अगले अनुदात्त पर चिह्न नहीं डालते — भव॑ति में भ पर उदात्त है। लेकिन व पर स्वरित चिह्न देकर ति पर अनुदात्त का चिह्न नहीं देते।

यदि उस अनुदात्त के बाद उदात्त आ जाये तो अनुदात्त पर चिह्न पड़ जायेगा- भव॑ति॒ सः।

वाक्य या पाद के आदि में यदि कई अनुदात्त हों और उनके बाद उदात्त आ जाये तो सभी अनुदात्तों को चिह्नित करते हैं - वै॒श्वा॒न॒रम्।

स्वरित के बाद अनुदात्त पर तब तक चिह्न नहीं लगता जब तक आगे उदात्त नहीं आ जाता - इ॒मं मे॑ गंगे यमुने सरस्वति॒ शुतु॑द्रि।

स्वरचिह्न का यह नियम पाद के अन्दर नहीं, श्लोकार्ध के अन्दर है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

स्वरित का दो भेद हैं। जो स्वरित उदात्त के बाद अनायास आ जाता है उसे अनित्य कहते हैं - भर्वति का स्वरित अनित्य है।

जो स्वरित उदात्त और अनुदात्त के योग से बनता है उसे नित्य कहते है - क्व।

जब नित्य स्वरित के बाद उदात्त आता है तो ह्रस्व स्वर के बाद १ और दीर्घ स्वर के बाद ३ डालकर उस पर अनुदात्त और स्वरित दोनों चिह्न डाल देते हैं - अ॒प्सु - अ॒न्तः = अ॒प्स्व१॒न्तः, रा॒यो - अ॒वनि = रा॒यो ३॒ऽवनिः।

बताये हुए नियमों के अनुसार कुछ मंत्रों के संहितापाठ को पदपाठ में और पदपाठ को संहितापाठ में बदलकर अभ्यासकर लेना चाहिये। मिलान करने पर त्रुटि मालूम होने पर कारण ढूँढना चाहिये। थोड़े अभ्यास से ही इस विषय पर अधिकार हो जायेगा।

अब प्रत्येक वैदिक शब्द के उदात्तादि स्वरों की जानकारी दी जाती है।

(१६३) सामान्य नियम तो यही है कि प्रत्येक वैदिक शब्द में कम से कम एक उदात्त अवश्य रहता है (अनुदात्तं पदमेकवर्जम्)। लेकिन कुछ शब्द सर्वानुदात्त होते हैं और कुछ शब्दों पर दो उदात्त भी होते हैं।

साधारण बोलचाल में जब किसी को दूर से बुलाते हैं तो उसमें उदात्त अनुदात्त और स्वरित वाली बात नहीं रह जाती है और शब्दों का उच्चारण एक लय में होता है, जिसे एकश्रुति कहते हैं (एकश्रुति दूरात्सबुद्धौ)। यज्ञ क्रिया के समय, मंत्रपाठ को छोड़कर, सामान्य बातचीत के समय एकश्रुति ही रहती है (यज्ञ कर्मण्यजपन्यूंखसामसु)। संहितापाठ में भी उदात्त के बाद वाले अनित्य स्वरित से लेकर अगले उदात्त के पहले तक कई अनुदात्तों की एकश्रुति ही होती है। (स्वरितात्संहितायामनुदात्तनाम्) अन्तिम अनुदात्त तो और धीमा हो जाता है जिसे अनुदात्ततर या सन्नतर कहते हैं (उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतरः) - इ॒मं मे॑ गंगे यमुने सरस्वति॒ शुतु॑द्रि॒ स्तोमं॑ सचता॒ परु॒ष्ण्या। यहाँ सरस्वति का चिह्नित अनुदात्त सन्नतर है।

स्वर के संबन्ध में पाणिनि के सभी सूत्र स्पष्ट नहीं मालूम पड़ते। इसलिये पाणिनि का उद्धरण तभी दिया जायेगा जब उसमें स्पष्टता और निश्चय हो। अस्तु।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

(१६४) कृदन्त और तद्धित स्वर

कुछ शब्दों में उदात्त प्रत्यय पर होता है, कुछ शब्दों में धातु पर, तथा कुछ में उपसर्ग पर।

कृत् प्रत्यय - अस् से जब कर्तृवाचक संज्ञा बनती है तो उदात्त प्रत्यय पर होता है, लेकिन जब भाववाचक संज्ञा बनती है तो उदात्त धातु पर होता है - अपस् (कर्मठ) अपस् (काम)। कहीं - कहीं तो यही अन्तर लिंग का भेद दिखाता है - रक्षस् पु० रक्षस् न०।

इष्ठ प्रत्ययान्त शब्द में उदात्त धातु पर रहता है, लेकिन अर्थ भेद से यह विभक्ति पर चला जाता है — ज्येष्ठ (उम्र में सबसे बड़ा) ज्येष्ठ (अन्यथा सबसे बड़ा), कनिष्ठ (उम्र में सबसे छोटा) कनिष्ठ (अन्यथा सबसे छोटा)।

उपसर्ग से समस्त होने पर उदात्त उपसर्ग पर चला आता है - आ-गमिष्ठ।

ईयस् प्रत्ययान्त शब्दों में भी उदात्त धातु पर ही रहता है - जवीयस्, लेकिन उपसर्ग से समस्त रहने पर उपसर्ग पर - जवीयस् प्रति-च्यवीयस्।

तृ प्रत्ययान्त शब्दों में कर्तृवाचक अर्थ में उदात्त प्रत्यय पर, क्रियावाचक अर्थ में धातु पर दातृ (देने वाला) दातृ (दान)।

इसी तरह, मन् प्रत्ययान्त शब्द - कर्मन् न० (काम) कर्मन् (करने वाला), दृ दुर्मन्। (तोड़ने वाला)। स्वर भेद से अर्थ भेद या लिंग भेद यहाँ भी है - ब्रह्मन् न० (प्रार्थना) ब्रह्मन् पु० (प्रार्थना करने वाला), सद्मन् न (स्थान) सद्मन् (बैठने वाला)। यदि उपसर्ग युक्त है तो उदात्त उसी पर आ जाता है - प्रभर्मन्।

मत्वर्थक इन् मिन् विन् उदात्त है - अश्विन् (शीघ्र गति वाला)।

पाणिनि के अनुसार ह्रस्व स्वर और न् के बाद वाला मत् वत् उदात्त है (ह्रस्वनुड्भ्यां मतुप्)। अपवाद भगवत्।

अतिशय वाचक तम पर उदात्त नहीं रहता, लेकिन पूरण अर्थ वाले तम का अन्तिम अक्षर उदात्त है- शततम (सौवाँ), उत्तम, शश्वत्तम।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

म प्रत्यय उदात्त है - अधम, अष्टम, अन्तम।

यह याद रखें कि कोई नियम विना अपवाद के नहीं हैं।

(१६५) समास स्वर

पाणिनि के अनुसार समास का अन्तिम पद उदात्त होता है (समासस्य - अन्त उदात्तः स्यात्)। लेकिन यह नियम तत्पुरुष और कर्मधारय के लिये है। बहुव्रीहि का पूर्वपद ही उदात्त होता है - इन्द्रस्य शत्रुः इन्द्रशत्रुः (तत्पु०)। इन्द्रः शत्रुर्यस्य = इन्द्रशत्रुः (बहुव्रीहि)। फिर भी कुछ बहुव्रीहि समास में उदात्त उत्तरपद के अन्तिम अक्षर पर होता है - तुवि धुम्न, पुरुपुत्रः, बहुन्नः। लेकिन बाद वाली संहिता सामान्य नियम पर चलने लगती हैं। उदात्त पूर्वपद पर होता है।

द्विगु, नञ् और सु दुस् वाले समास में उदात्त उत्तर पद पर रहता है द्विपद त्रिनाभि, दुर्मन्मन्, सुभग, अदन्त्, अफल।

यद्यपि तत्पुरुष और कर्मधारय समास में उदात्त उत्तरपद पर ही रहता है और अन्तिम अक्षर पर, कहीं-कहीं पहले अक्षर पर भी होता है — प्रथम - जा, प्रातर्युज्, महाधनम् दुर्गृभि, सुतर्मन् रघुपत्वन्, पूर्वपेय।

कभी-कभी कर्म धारय और बहुव्रीहि का अन्तर दिखाने के लिये क्रमशः पूर्वपद और उत्तरपद पर उदात्त रहता है - अ-मनुष (कर्मधा) अमात्र (बहुव्रीहि)।

लेकिन तत्पुरुष कर्मधारय में भी विशेष परिस्थिति में उदात्त पूर्वपद पर आ जाता है-

अव्यय + निष्ठा, तिप्रत्ययान्त

दुर्हित सुधर्स्तुति।

नञ् + विशेषण विशेष्य

अनदत् अविद्वान् अकृत अतन्द्र अकुमार अरि।

उपपद समास में तो उत्तरपद पर ही उदात्त होता है - गोत्र-भिद, अग्निमिन्ध, भद्रवादिन् उदमेघ।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

यदि उत्तरपद कर्तृवाचक शब्द है तो उसके पहले अक्षर पर उदात्त होता है - देवमादन अहिहत्य पथिरक्षि सोमपावन्।

तृतीया तत्पुरुष में पूर्वपद पर उदात्त होता है - देवहित धनसाति।

कभी-कभी षष्ठी तत्पुरुष में भी-गृहपति। लेकिन बाद वाली संहितायें तो तत्पुरुष का ही नियम रखती हैं - अप्सरापति अहर्पति नदीपति।

कुछ षष्ठी तत्पुरुष तो दो उदात्त वाले होते हैं - बृहस्पति अपां नपात् नराशंस शुनःशेप शचीपति तनूनपात् नृशंस।

द्वन्द्व समास के अन्तिम अक्षर पर उदात्त होता है - अजावि अहोरात्र इष्टापूर्त। लेकिन अव्यय अर्थ वाले द्वन्द्व में पूर्व पद पर ही उदात्त होता है - अहर्दिवि सायंप्रातः।

देवता द्वन्द्व में दोनों पद पर उदात्त होता है — इन्द्रावरुणा सूर्यामासा। कभी-कभी देवताद्वन्द्व से बाहर भी तुर्वशायदू मातरापितरा।

देवता द्वन्द्व में भी कभी एक पर ही उदात्त होता है - इन्द्राग्नी इन्द्रवायू।

(१६६) सुबन्त स्वर

संबोधन पद में पहले अक्षर पर उदात्त होता है - संबोधन पितः देव कर्ता पिता देवः (आमन्त्रितस्य च - आदिरुदात्तः)।

अकारान्त शब्द के अन्तिम अक्षर पर उदात्त होता है - देवः देवम् देवस्य देवानाम्।

एकाक्षर आकारान्त शब्द, सर्वनाम तथा संख्या द्व के साथ उदात्त पहले अक्षर पर होता है- मया मह्यम् मयि तस्य तेषाम् ताभिः द्वाभ्याम् द्वयोः।

५ से १० संख्या तो आद्युदात्त है (पंच, सप्त अष्ट नव दश), लेकिन मध्यम विभक्ति और नाम् के पहले उदात्त अन्तिम अक्षर पर आ जाता है - पंचानाम् पंचभिः सप्तानाम् सप्तभिः।

इदम् के रूपों में भी उदात्त कभी विभक्ति पर चला जाता है - अस्मै लेकिन अस्य एषाम्, आभिः लेकिन आसाम्।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

एकाक्षर शब्दों के अबल रूपों में उदात्त विभक्ति पर चला जाता है - धिया धीभिः धीनाम् भू भुवः नौ नावा। लेकिन गो हमेशा आद्युदात्त ही रहता है। गो गवा गवाम् गोभिः। रम् रंसु वन् वंसु। लेकिन वनाम्।

शब्दों के मध्यस्वर लोप की अवस्था में उदात्त स्वरादि विभक्ति पर आ जाता है - महिमन् महिम्ना।

षष्ठी बहुवचन का नाम् तो प्रायः उदात्त ही रहता है - अग्नीनाम् धेनूनाम् (नामन्तरस्याम्)।

सबल और अबल रूप वाले व्यंजनान्त शब्दों में उदात्त अबल रूप के स्वर पर रहता है - महान् महता, प्रत्यङ् प्रतीचा।

(१६७) तिङन्त स्वर

वाक्य या पाद के भीतर उदात्त वाला भी तिङ्न्त रूप अनुदात्त हो जाता है। भूतकाल के आगम पर ही उदात्त रहता है। (लुङ् लङ् लृङ्क्ष्वडुदात्तः) - अभवत् अभूत् अजगन् अभरिष्यत्। आगम के न रहने पर उदात्त भ्वादि दिवादि गण में धातु स्वर पर तथा अन्यत्र विकरण पर रहता है - भृ भरत् भरति भिद् भिनत्ति भिनत्।

अभ्यस्त धातुरूपों में उदात्त धातु स्वर पर रहता है - चाकन् तस्तम्भत्।

लुङ्

सिच् विकरण वाले रूपों में उदात्त धातु पर होता है (आदिः सिचोऽन्तरस्याम्) — वन् वंसि शंस् शंसिषम्।

च्लि (शून्य) विकरण वाले रूपों में परस्मैपद एकवचन में धातुपर लेकिन अन्यत्र विभक्ति पर उदात्त होता है — वृज् ३ एकव० वर्क् २ एकव० आ० नुत्थाः।

अङ् सक् विकरण वाले रूपों में उदात्त विकरण पर ही होता है - रुहम् विदत बुधन्त धुक्षन्त।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

चङ् विकरण वाले रूपों में उदात्त कभी तो अभ्यास वाले अक्षर पर और कभी धातु पर होता है - नीनशः पीपरत् जीजनन् शिश्नथत्।

भ्वादि और दिवादि गण में उदात्त धातु स्वर पर रहता है, लेकिन तुदादि गण में विकरण पर रहता है - भवति नह्यति लेकिन तुदति।

स्वादि, रुधादि, तनादि और क्र्यादि गण में उदात्त सबल रूपों में विकरण पर लेकिन अबल रूपों में विभक्ति पर रहता है। उदात्त अदादि गण के धातुस्वर पर जुहोत्यादिगण के अभ्यास स्वर पर होता है लेकिन अबल रूपों में विभक्ति पर - अस्ति अद्धि बिभर्ति बिभृमसि कृणोति कृणुहि युनज्मि युङ्क्ते गृह्णाति गृणीहि करोति कुरुतः।

लिट् में उदात्त सबल रूपों में धातु स्वर पर लेकिन अबल रूपों में विभक्ति पर होता है - चकार चक्रुः चकृमहे।

लुङ् के आधार पर बने अर्थों में लेट् तथा लोट् ३ एकव० का उदात्त हमेशा धातुपर या अ विकरण पर होता है। अन्य अर्थों का उदात्त विभक्ति पर होता है।

लेट्	**लोट्**	**अन्य अर्थ**
करत् गमन्ति	श्रोतु	अश्याम् अशीमहि
भजते		
यक्षत		भक्षीय
बोधिषत्		धुक्षीमहि
विदात्		विदेयम्

लृट् में उदात्त हमेशा स्य या इष्य पर रहता है —

एष्यामि करिष्यति।

बनावटी क्रियाओं में उदात्त एक ही स्थान पर रहता है — णिजन्त में अय के प्रथम अक्षर पर — क्रोधयति, कर्मवाच्य, यङन्त नामधातु में य पर पन्यते देदिह्यते, गोपायन्ति, सन्नन्त में अभ्यास अक्षर पर पिपीषति, यङ्लुगन्त में कभी अभ्यास पर कभी विभक्ति पर जोहवीति जर्भृतः।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

क्रियात्मक विशेषण और अव्यय

(१६८) शतृ शानच् से समस्त होने पर उपसर्ग अपना उदात्त खो देता है - अप गच्छंत्, अप गच्छंमान। वैसे ही क्वसु कानच् के साथ - अप जगन्वस्, अपजग्मान।

लेकिन जब उपसर्ग धातु से अलग रहता है तो उसका अपना उदात्त आ जाता है - अपं.............दद्रंत्, आ च परां च.........चरन्तम्।

निष्ठा का त स्वयं उदात्त है पर उपसर्ग के साथ यही अपना उदात्त खो देता है - हित लेकिन निहितं। यदि उपसर्ग दो हैं तो पहला अनुदात्त हो जाता है — समाकृंतम्। लेकिन अलग रहने पर पहले उपसर्ग पर भी उदात्त आ जाता है - प्र यत् समुद्र आहिंतः।

कृत्य के य त्य और त्व का धातुस्वर उदात्त होता है - चक्ष्यं श्रुत्यं चकृत्यं।

आय्य एन्य अनीय का उपधा स्वर उदात्त होता है। (उपोत्तमं रिति) - पुनाय्यं इक्षेण्यं उपजीवनीयं तव्य का अन्तिम स्वर स्वरित होता है (तित्स्वरितम्)। जनितव्यंः (तव्यत्तव्यानीयरः)।

इनसे समस्त उपसर्ग कभी उदात्त नहीं होता - परिचक्ष्यं आमन्त्रणीयं आयुंसेन्यं।

(१६९) तुमर्थ

अये तये असे वने अध्यै वाले तुमर्थ पद में प्रत्यय के पहले अक्षर पर उदात्त होता है - दृशयें पीतयें चरसें दावनें इयध्यैं, लेकिन कहीं-कहीं चक्षंसे धूर्वंणे गमंध्यै आद्युदात्त भी है।

क्विबन्त शब्दों से बने तुमर्थ के विभक्ति स्वर पर उदात्त है - दृश् दृशे। उपसर्ग अनुदात्त ही रह जाता हैं - समिधें। अभि प्रचक्षंसे। लेकिन कुछ अलग हटे हुए उपसर्गों पर तो उदात्त होता ही है प्र दावनें।

मने अम् अस् तुम् तोस् तवे तवै वाले रूप में धातुस्वर पर उदात्त होता है - दामंने शुभंम् आसदंम् अवपदंः दातुंम् गन्तोंः भर्तवे गन्तवैं।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तुम् तोस् से समस्त उपसर्ग उदात्त होता है - संर्कर्तुम् निर्धातोः अपि धातवे अपं भर्तवै।

(१७०) पूर्वकालिक क्रिया

त्वा त्वी त्वाय वाली पूर्वकालिक क्रिया के प्रत्यय पर ही उदात्त होता है, लेकिन उपसर्ग युक्त य त्य वाली पूर्वकालिक क्रिया का उदात्त धातु स्वर पर होता है - भूत्वा गत्वी गत्वाय लेकिन संगृभ्य उपश्रुत्य।

विशेषण से क्रियाविशेषण होने वाले शब्द तुरत अपना उदात्त स्थान बदल लेते हैं - अपरम् (बाद वाला) अपरम् (बाद)।

(१७१) सन्धि स्वर

जब दो स्वर मिलकर एक हो जाते हैं और दोनों में से कोई उदात्त वाला है तो जोड़ उदात्त ही होता है (एकादेश उदात्तेनोदात्तः) — आ + अगात् = आगात्, नुदस्व + अर्थ = नुदस्वार्थ, क्व + इत् = क्वेत्, न + अन्तरः = नान्तरः।

लेकिन दिवि + इव = दिवीव - यहाँ उदात्त + अनुदात्त = स्वरित का सामान्य नियम लागू हुआ है।

जब उदात्त वाला इ ई और उ ऊ भिन्न स्वर के पहले क्रमशः य् व् हो जाते हैं तो भी उदात्त + अनुदात्त = स्वरित। लेकिन पढते समय सन्धि टूट जाती है और पुरानी स्थिति रह जाती है।

जब ए ओ के बाद वाला उदात्त अ हट जाता है तो यह अपना उदात्त पूर्ववर्ती स्वर पर फेंक देता है - सूनवे + अग्ने = सूनवेऽग्ने, वो + अवसः = वोऽवसः।

लेकिन जब अगला अ अनुदात्त रहता है तो उदात्त + अनुदात्त = स्वरित - सो + अधमः=सोऽधमः पढ़ते समय लुप्त अ फिर चला आता है।

(१७२) वाक्य स्वर

संबोधन पहले अक्षर पर उदात्त होता है और यह उदात्त तभी कायम रहता है जब संबोधन वाक्य या पाद के आदि में हो - अग्ने सूपायनो भव देवता द्वन्द्व का भी उदात्त पहले ही अक्षर पर आ जाता है - मित्रावरुणा।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

यदि पाद के आदि में कई संबोधन हैं तो वे सभी आद्युदात्त होंगे - अदि॑ते मित्र वरु॑ण।

अगले उदात्त के लोप से अनुदात्त भी उदात्त हो जाता है - सूनवै॑ + अग्नै॑ = सूनवेऽग्नै॑ (अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः)।

वाक्य या पाद के बीच में संबोधन अनुदात्त हो जाता है - उप॑ त्वाग्ने दिवेदि॑वे (आमंत्रितस्य च)।

उदात्त के बाद अनुदात्त जो स्वरित रूप ले लेता है (उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः) वह अनित्य कहलाता है, लेकिन जो उदात्त + अनुदात्त = स्वरित होता है वह नित्य कहलाता है। ते + अवर्धन्त = तेऽवर्धन्त में ते का स्वरित नित्य है।

पाद के भीतर क्रिया पर उदात्त तभी रहता है जब यह यत् सर्वनाम से संबद्ध रहता है - यं यज्ञं परि॑भूरसि॑ अन्यथा क्रिया अनुदात्त रहती है। अग्नि मी॑ळे पुरोहि॑तम्।

एक वाक्य में क्रिया एक ही हो सकती है। अतः यदि दो क्रियायें हैं तो दूसरी क्रिया पर उदात्त होगा - तेषा॑ पाहि श्रुधी हव॑म्।

क्रिया यदि संबोधन पद के बाद है तो भी क्रिया पर उदात्त होगा - अग्नै॑ जुषस्व॑ नो हविः।

जहाँ हर संबोधन के बाद क्रिया है वहाँ दोनों उदात्त होंगे - इन्द्र जीव सूर्य जीव देवा जीव॑त।

साधारण वाक्य में उपसर्ग अनुदात्त क्रिया से अलग रहकर अपना उदात्त रखता है, लेकिन यत्सर्वनाम वाले वाक्य में क्रिया पर ही उदात्त रहता है। उपसर्ग अनुदात्त हो जाता है - यद् .... निषीद॑धः।

यत् सर्वनाम वाले वाक्य में यदि क्रिया उपसर्ग से अलग है तो उपसर्ग पर भी उदात्त होगा, क्रिया पर भी-वि यो ममे रजा॑सि।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

वैदिक धातुरूप-कोष

इस धातुरूप कोष में यथासंभव सभी वैदिक धातुओं को सम्मिलित किया गया है। जो लकार लौकिक और वैदिक - दोनों हैं, उन्हें छोड़ दिया है। आगम रहित आज्ञार्थक भूत को भी नहीं लिया है। अप्राप्त रूपों का स्थान खाली छोड़ दिया है। लुङ् के सभी भेद नाम सहित निर्दिष्ट कर दिये गये हैं; यथा ०, अङ्, चङ्, स स् इष् सिष्। धातुरूपों की तालिका इस प्रकार है —

			एकव०	द्विव०	बहुव०
धातु	लकार	प्रपु० ३	-	-	-
		मपु० २	-	-	-
		उपु० १	-	-	-

जैसे किसी व्यक्ति को उसके मुख को देखकर पहचानते हैं, उसी प्रकार किसी धातुरूप की पहचान होती है विभक्ति से। अत: विभक्ति की संपूर्ण तालिका को लकार के अनुसार अपने सामने रखना चाहिये या उन्हें याद ही कर लेना चाहिये। लिङ् और आशीर्लिङ् के रूपों को पहचानने में कठिनाई होती है; जैसे मुक्षीय आशीर्लिङ् (मुच् + सीय १ आ०) भी हो सकता है और लुङ् + लिङ् (मुच् + स् + ईय १ आ०) भी।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

धातु	लकार		रूपावली		
			एकव०	द्वि०	बहुव०
अंश् अश्नोति	लेट्	३	अश्नवत्	-	-
	लिट्	३	आनाश	-	आनशुः
			अनाशे	-	-
	लिट्+लेट्	१	-	-	आनशामहै
	लिट्+लिङ्	१	आनश्याम्	-	-
	कानच्		आनशान	-	-
	लुङ्(०)आ	३	आष्ट	-	आशत
	आज्ञार्थक		अष्ट	-	अशत
	लुङ्(०)+लिङ्	३	अश्यात्	-	-
	लुङ्(०)+ आशी०	३	अश्याः	-	-
	लुङ्(स्)+लेट्	३	अक्षत्	-	-
	लुङ्(अ)+लिङ्	३	अशेत्	-	-
अज् अजति-ते	लेट्	३	अजाति	-	-
		२	अजासि	-	-
अञ्ज् अनक्ति अंक्ते	लेट्	३	अनजत्	-	-
	लोट्	२	अङ्धि	-	-
	लिट्+लेट्	१	अनजा	-	-
	लिट्+लिङ्	३	अनज्यात्	-	-
	कानच्		अनजान	-	-
अद् अत्ति	लेट्	३	अदत्	-	अदान्
अन् अनति अनिति	लुङ्(इष्)	३		-	आनिषुः
अम् अमीति अमे			-	-	-

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अर्च् अर्चति	लेट्	३	अर्चाति	-	अर्चान्
	लिट् आ०	३	आनृचे	-	-
अव् अवति	लेट्	३	अवात्	-	-
	लुङ्(०)+लिङ्	२	अव्याः	-	-
	आशी	३	अव्याः	-	-
	लुङ्(इष्)+लोट्	३	अविष्टु	अविष्टाम्	-
		२	अविड्ढि	-	अविष्टन
अश् अश्नाति	लुङ्(इष्)	३	आशीत्	-	-
		२	आशीः	-	-
अस् अस्ति	लेट्	३	असति असत्	-	असन्
		२	अससि असः	असथः	असथ
आप् आप्नोति	लुङ्(चङ्)	३	-	-	आपिपन्
	लुङ् (अ)	३	आपत्	-	-
	लुङ्(अ)+लिङ्	१	आपेयम्	-	-
	णिच्+सन्+लिङ्	३	आपिपयिषेत्	-	-
	कानच्		आपान	-	-
आस् आस्ते	लेट्	३	आसते	-	-
	लुङ्(इष्) आ०	३	आसिष्ट	-	-
इ एति इतः यन्ति	लेट्	३	अयति अयत्	अयतः	अयन्
इनोति		२	अयसि अयः	-	-
		१	अयानि अया	-	अयाम
	लिट्+लङ्	२	ऐयेः	-	-
	क्वसु		ईयिवस्	-	-
इध् इन्द्धे	लेट्	३	इनधते	-	-
	लुङ्(०) लेट्	३	इधते	-	-
	लुङ्(०)+लिङ्आ०	१	-	-	इधीमहि

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

	लुङ्(इष्)आ०	३	इन्धिष्ट	-	-
	लुङ्(इष्)+लिङ्	१	इन्धिषीय	-	-
इष् इछति ते	लेट्	३	इछात्	-	-
	लङ्(इष्)	३	एषीत्	-	ऐषिषुः
ऋ ऋछति	लेट्	३	ऋछात्	-	-
ऋणोति	लेट्	२	ऋणवः	-	-
	लुङ्(०)+लिङ्	३	अर्यात्	-	-
	आ०		आरीत	-	-
	लुङ्(अ)	३	आरत्	-	आरन्
		२	-	-	आरत
		१	अरम्	-	-
	लुङ्(अ)+लेट्	१	-	-	अराम्
	क्वसु		आरिवस्		
	कानच्		आराण		
	लुङ्(चङ्)	१	अर्पिपम्	-	-
ऋध् ऋध्नोति	लेट्	३	ऋणधत्	-	-
ऋध्यति ते	लुङ्(०)+लेट्	३	ऋधत्	-	-
ऋणद्धि	आ०	२	-	ऋधाथे	-
	लुङ्(०)+लिङ्	२	ऋध्याः	-	-
		१	ऋध्याम्	-	ऋध्याम
					आ० ऋधीमहि
	लुङ्(०)+आशी	१	ऋध्यासम्	-	-
	लुङ्(अ)+लिङ्	३	ऋधेत्	-	-
		१	-	-	ऋधेम
एज् एजति	लेट्	३	एजाति एजात्	-	-
एध् एधते	लुङ्(इष्)+लिङ्	१	एधिषीय	-	-

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

कन् का	लिट्+लेट	३	चाकनत्	-	-
		२	चाकनः	-	-
		१	-	-	चाकनाम
	लिट् + लङ्	२	चाकन्	-	-
	आ०	३	-	-	चाकनत्त
	लिट्+लिङ्	३	चाकन्यात्	-	-
	लिट्+लोट्	३	चाकन्तु	-	-
		२	चाकंधि	-	-
	लुङ्(इष्)	१	अकानिषम्	-	-
	लुङ्(इष्)+लेट्	२	कानिषः	-	-
कम् कामयते	लेट्	२	कामयासे	-	-
	कानच्		चकमान	-	-
काश् काशते	यङ्लुक्	३	चाकशीति	-	-
		१	चाकशीमि	-	-
	लेट्	३	-	-	चाकशान्
कृ कृणोति	लेट् पर०	३	कृणवत्	-	कृणवन्
		२	कृणवः	-	कृणवथ
		१	कृणवा	कृणवाव	कृणवाम
करोति	आ०	३	कृणवते	कृणवैते	कृणवन्त
		२	कृणवसे	-	-
		१	कृणवै	कृणवावहै	कृणवामहै
		३	करवात्	-	-
		२	करवः	-	-
	लिट्+लिङ्	२	चक्रियाः	-	-
	लिट्+लङ्	३	अचक्रत्	-	-
		१	अचकरम्	-	-

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

	लुङ् (०) + लेट्	३	करति करत्	-	करन्ति करन्
		२	करसि करः	-	-
		१	कराणि करा	-	-
	आ०	३	करते	-	-
		२	करसे	-	-
		१	-	-	करामहे
	लुङ्(०)लिङ्	१	क्रियाम्	-	क्रियाम
	+आशी	१	-	-	क्रियास्म
	+लोट्	२	कृधि	कर्तम् कृतम्	कृत कृतन
	आ०	२	कृष्व	-	कृध्वम्
	लुङ्(अ०)+लोट्	३	-	करताम्	-
		२	कर	करतम्	-
	लृट्+लेट्	२	करिष्याः	-	-
	क्रि०वि०		क्रत् क्राण		
	क्वसु		चकृवस्		
	कानच्		चक्राण		
कृ किरति	लेट्	२	किरासि	-	-
	लुङ्(इष्)+लेट्	३	कारिषत्	-	-
क्लृप् कल्पते	लुङ्(चङ्)+लेट्	३	चीक्लृपाति	-	-
क्रम् क्रामति क्रमते	लुङ्(स्)+लेट्	३	क्रंसते	-	-
	(इष्)+लोट्	२	-	क्रमिष्टम्	-
क्रुध्	लुङ्(चङ्)+लेट्	१	-	-	चुक्रुधाम
क्षि क्षेति	लेट्	३	क्षयत्	-	-
		२	क्षयः	-	-
		१	-	-	क्षयाम
	लुङ्(स्)+लेट्	३	क्षेषत्	-	-

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

गम् गच्छति	लेट्	३	गछाति गछात्	-	गछान्
		२	गछासि गछाः	-	-
	लिट्+लङ्	३	अजगन्	-	आ० अजग्मिरन्
		२	अजगन्	-	अजगन्त
	लिट्+लिङ्	२	जगम्यात्	-	जगम्युः
		२	-	जगभ्यातम्	-
		१	जगम्याम्	-	-
	लुङ्(०)	३	अगन्	-	अग्मन्
		२	अगन्	-	अगत
		१	अगमम्	-	अगन्म
	आ०	३	-	-	अग्मत
		२	अगथाः	-	-
		१	-	अगन्वहि	अगन्महि
	लुङ्(०)+लेट्	३	गमत्	गमतः	गमन्ति
		२	गमः	गमथः	-
		१	गमानि	-	गमाम
	लुङ्(०)+लिङ्	३	गम्याः	-	-
		२	गम्याः	-	-
	आ०	१	गमीय	-	-
	+आशी०	३	गम्याः	-	-
	+ लोट्	३	गन्तु	गन्ताम्	गमन्तु
		२	गहि गधि	गन्तम् गतम्	गत गन्त गन्तन
	लुङ्(अ)+लेट्	३	-	गमातः	-
		२	-	गमाथः	-
	लिङ्	३	गमेत्	-	-

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

		२	गमेः	-	-
		१	गमेयम्	-	गमेम
					आगमेमहि
	लुङ्(स्)+लिङ् आ०	१	-	-	अगस्महि
	(इष्)+लिङ्	२	-	गमिष्टम्	-
	आ०	१	गमिषीय	-	-
	यङ्लुक्	३	-	-	गनीगन्ति
	क्रि० वि०		गनिग्मत्	-	-
गा जिगाति	लिट् + लेट्	३	जगायात्	-	-
	लु(०) + लेट्	३	गात्	-	-
		२	गाः	-	-
		१	गानि	-	गाम
	लुङ् (स्)	१	गेषम्	-	गेष्म
गै गायति	लुङ्(स्) आ०	१	गासि	-	-
	लुङ्(सिष्)+ लेट्	३	गासिषत्	-	-
गृ (गुर्)	लिट् + लेट्	३	जुगुरत्	-	-
	लिट्+लिङ्	३	जुगुर्यात्	-	-
		२	जुगुर्याः	-	-
	लुङ् (०) आ०	३	गूर्त	-	-
गृ जागर्ति	लुङ्(चङ्)+लोट्	२	जिगृहि	जिगृतम्	जिगृत
	+ लेट्	३	जागरत्	-	-
		२	जागरासि	-	-
	लुङ्(चङ्)+लिङ्	१	-	-	जाग्रियाम जागृयाम
	+लोट्	३	-	जागृताम्	-
		२	जागृहि	जागृतम्	
			जागृतात्		

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

गृध्	लुङ् आ	३	अगृधत्	-	-
			गृधत्	-	-
		२	गृधः	-	-
गृ	लुङ्(०)+लेट्	३	गरत्	-	गरन्
	यङ् लुक +लेट्	२	जल्गुलः	-	-
	लुङ् (इष्)	३	गारीत्	-	-
ग्रभ् गृभ्णाति	लेट्	२	गृभ्णाः	-	-
	लिट्+लिङ्	३	जगृभ्यात्	-	-
	लिट्+लङ्	३	अजग्रभीत्	-	-
		१	अजग्रभम्	-	-
	लुङ् (अ)	१	अगृभम्	-	-
	लुङ् (चङ्)	३	अजिग्रभीत्	-	-
	लुङ् (इष्)	३	अग्रभीत्	-	-
		१	अग्रभीम्	-	-
ग्रस्	लिट्+लिङ् आ०	३	जग्रसीत	-	-
ग्रह् गृह्णाति	लुङ्(अ) आ०	१	-	-	अगृहामहि
	लुङ्(इष्)	३	अग्रहीत्	-	-
	आ०		अग्रहीष्ट	-	-
घस्	लिट्+लिङ्	३	जक्षीयात्	-	-
	क्वसु		जक्षिवस्	-	-
	लुङ्(०)	३	अघत्	अघस्ताम्	अक्षन्
		२	अघः	-	अघस्त
	लुङ्(०)+लेट्	३	घसत्	-	-
		२	घसः	-	-
	लुङ्(०)+लोट्	३	-	घस्ताम्	-
	लुङ्(स्)	२	अघाः	-	-

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

	लुङ्(चङ्)	३	अजीघसत्	-	-
घुष्	लेट्	३	घोषात्	-	घोषान्
चक्ष् चष्टे	लिट्+लङ्	१	अचचक्षम्	-	-
चर् चरति	लेट्	३	-	चरातः	चरान्
	आ०		चरातै	-	-
चित्	लिट्+लेट्	३	चिकेतति	-	-
			चिकेतत्	-	-
		२	चिकितः	चिकेतथाः	-
	लिट्+लोट्	२	चिकिद्धि	-	-
	क्वसु		चिकित्वस्	-	-
	कानच्		चिकितान	-	-
	लिट्+लङ्	३	अचिकेतत्	-	-
		१	अचिकेतम्	-	-
चुद् चोदयति	लेट्	३	चोदयात् आ०	चोदयाते	-
		२	चोदयासि आ०	चोदयासे	-
जन् जनति, जायते	लेट्	३	जनाति जनात्	-	-
	लुङ् (इष्)+लिङ्	१	जनिषीय	-	-
	आ०	३	जनिषीष्ट	-	-
	लेट्	२	जनायाः	-	-
जंभ्	लुङ् (इष्)	३	जम्भिषत्	-	-
जि जयति	लेट्	३	जयाति	-	-
		२	जयासि, जयाः	-	-
	लुङ्(स्)+लेट्	३	जेषत्	-	-
		२	जेषः	-	-
		१	-	-	जेषाम
	आज्ञार्थक	२	जेः	-	-

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

		१	जेषम्	-	जेष्म
जीव् जीवति	लेट्	३	जीवाति जीवात्	-	-
		२	जीवासि जीवाः	-	-
	लुङ्+आशी	१	जीव्यासम्	-	-
जुष्	लिट् + लेट्	३	जुजोषति जुजोषत्	-	जुजोषन्
		२	-	-	जुजोषथ
	आ०	३	जुजोषते	-	-
	लोट्	२	-	-	जुजुष्टन
जू जुनाति	लेट्	२	जुनाः	-	-
जॄ	क्वसु		जुजुर्वस्	-	-
ज्ञा जानाति	लुङ्(०)+लिङ्	२	ज्ञेयाः		
	लुङ् (स्)	१	अज्ञासम्	-	-
	(सिष्)	१	अज्ञासिषम्	-	-
तंस्	यङ् लुक् लेट्	३	तन्तसैते	-	-
तन्	लिट्+लेट्	३	ततनत्	ततनतः	ततनन्
		१	-	-	ततनाम
	लिट्+लिङ्	३	-	-	ततन्युः
तप्	लिट्+लेट्	३	ततपते	-	-
	लुङ्(चङ्)+लेट्	२	तीतपासि	-	-
तिज्	लिट्+लोट्	२	तितिग्धि	-	-
तू	लिट्+लङ्	३	तूतोत्	-	-
		२	तूतोः	-	-
तुज्	लिट्+लिङ्	३	तुतुज्यात्	-	-
	कानच्		तूतुजान	-	-
तृ	लिट्+लिङ्	३	तुतुर्यात्	-	-
		१	-		तुतुर्याम

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तृद्	लिङ्(०)+लेट्	२	तर्दः	-	-
तृप्	लेट्	२	तृप्णवः	-	-
	लुङ्(०)+आशी	१	-	-	तृप्यास्म
तृह् तृणेटि तृंहन्ति	लोट्	३	तृणेढु	-	-
	लेट्	३	-	-	तृणहान्
तृ	लेट्	३	तराति	-	-
		२	-	तराथः	-
	लुङ्(इष्)+लेट्	३	तारिषत्	-	-
		२	तारिषः	-	-
	लुङ् (इष्)+लिङ् आ०	१	-	-	तारिषीमहि
त्यज्	लिट्	३	तित्याज	-	-
	लिट्+लोट्	२	तित्यग्धि	-	-
त्रा	लुङ्(स्)+लेट्	३	त्रासते	-	-
		२	-	त्रासाथे	-
	+लिङ् आ	२	-	त्रासीथम्	-
त्विष्	लिट्+लङ् आ०	३	-	-	अतित्विषन्त
दघ्	लुङ्(०)+आशी०	२	दध्याः	-	-
	लुङ्(०)+लोट्	२	-	धक्तम्	-
दभ्	लिट्+लङ्	३	-	-	ददभन्त
	लेट्	३	दभाति	-	-
दस् दास्	लेट्	३	दासात्	-	-
दह्	लेट्	३	दहाति	-	-
दा ददाति	लेट्	३	ददत्	-	ददन्
		२	ददः	-	-
	आ०	३	ददातै	-	-
		१	-	-	ददामहे

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

	लुङ्(१०)+लेट्	३	दाति दात्	-	-
		२	दाः	-	-
	लुङ्(०)+लिङ्	१	देयाम्	-	-
	लुङ्(०)+लोट्	३	दातु	दाताम्	-
		२	दीष्व	दातम्	दात
	लुङ् (स्)+लेट्	३	दासत्	-	-
		२	-	दासथः	-
	लुङ्	१	-	-	देष्म
दा	लुङ्(स्)+लिङ्	१	दिषीय	-	-
दाश्	लिट्+लेट्	३	ददाशति ददाशत्	-	-
		२	ददाशः	-	-
	क्वसु		ददाश्वस्	दाश्वस्	दाशिवस्
दिश् दिशति	लिट्+लेट्	३	दिदेशति	-	-
	लिट्+लोट्	२	दिदिड्ढि	-	दिदिष्टन
		३	दिदेष्टु	-	-
	लिट्+लङ् आ०	३	दिदिष्ट	-	-
	यङ्लुक्+लङ्	१	देदिशम्	-	-
	आ०	३	अदेदिष्ट	-	-
दिह् देग्धि	लेट्	३	देहत्	-	-
दी दीदी	लेट्	३	दीदयत्	-	-
	लोट्	२	दिदीहि दीदिहि	-	-
		२	दीदयसि दीदयः	-	-
दीप्	लुङ्(चङ्)	३	अदिदीपत् अदीदिपत्		-
दू	लुङ्(इष्)+लेट्	१	दविषाणि	-	-
दुह् दोग्धि	लेट्	३	दोहत्	-	-

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

	आ०		दोहते	-	-
	लिङ्	३	दुहीयत्	-	दुहीयन्
	लोट्	३	-	दुग्धाम्	-
	आ०	३	दुहाम्	दुहाताम्	दुह्राम् दुह्रताम्
	लुङ्(स्)लिङ्	१	-	-	धुक्षीमहि
	लुङ्(स)+लोट्	२	धुक्षस्व	-	-
दृ	लुङ्(स्)+लेट्	३	दर्षत्	-	-
	आ०	३	दर्षते	-	-
		२	दर्षसि	-	-
	यङ्लुक्+लेट्	३	दर्दिरत्	-	-
	+लोट्	२	दर्दृहि दादृहि	-	-
		३	ददर्तु	-	-
दृश्	लुङ्(०)+लेट्	३	दर्शति	-	दर्शन्
		२	-	दर्शथः	-
	लुङ्(स)+लिङ्	१	दृशेयम्	-	-
	लुङ्(स्)+लेट्	२	दृक्षसे	-	-
दृह्	लिट्+लङ्	३	-	-	अददृहन्त
द्रु	लिट्+लेट्	३	दुद्रवत्	-	-
	लिट्+लङ्	३	अदुद्रोत्	-	-
द्विष् द्वेष्टि	लेट्	३	द्वेषत्	-	-
	आ०	३	द्वेषते	-	-
		१	-	-	द्वेष्याम
धन्व् धन्वति	लेट्	३	धन्वाति	-	-
धा	लेट्	३	दधत्	-	दधन्
		२	दधः	दधथः	-

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

		१	दधानि	-	दधाम
	लिट्+लोट् आ	२	दधिष्व	-	दधिध्वम्
	लुङ्(०)+लेट्	३	धाति धात्	-	-
		२	धाः	-	-
		१	-	-	धाम
	आ०	२	धेथे	धैथे	-
		१	-	-	धामहे
	आज्ञार्थक	३	-	-	धुः
		१	धाम्	-	-
	आ०	१	-	-	धीमहि
	लोट्	३	धातु	-	धान्तु
		२	-	धातम् धात	धातन धेतन
	आ०	२	धिष्व	-	-
	लुङ्(स्)लेट्	२	-	धासथः	धासथ
	लुङ्(स्)+लिङ्	१	धिषीयः	-	-
			धेषीय	-	-
धाव्	लिट्+लङ्	३	अदधावत्	-	-
धी दिधीते	लेट्	३	-	-	दीधयन्
		२	दीधयः	-	-
धू धूनोति	लेट्	३	धूनवत्	-	-
धुवति	लिट+लङ्	३	दूधोत्	-	-
	लिट्+लिङ् आ०	३	दुधुवीत	-	-
धृ	लुङ्(चङ्)+लोट्	२	-	दिधृतम्	दिधृत
धृष्	लिट्+लोट्	३	दधर्षति दधर्षत्	-	-
		आ०	दधृषते		
	लिट्+लङ्	३	-	-	ददृधषन्त

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

ध्रज्	लुङ्(इष्)+लिङ्	१	ध्राजिषीय	-	-
नम्	लिट्+लङ्	२	ननमः	-	-
	लुङ्(स्)+लेट् आ०	३	-	-	नंसन्ते
		१	नंसे	-	-
नश्	लुङ्(०)+लिङ्	१	-	-	नशीमहि
नस्	-	१	-	-	नसीमहि
निन्द्	लुङ्(इष्)+लेट्	३	निन्दिषत्	-	-
	+सन्+लेट्	३	निनित्सात्	-	-
नी	लिट्+लेट्	२	-	निनीथः	-
	+लिङ्	३	निनीयात्	-	-
	+लोट्	३	निनेतु	-	-
	लुङ्(स्)+लेट्	३	नेषति नेषत्	-	-
		२	-	-	नेषथ
नु	लिट्+लङ्	३	अनुनोत् नुनोत्	-	-
पच्	लेट्	३	पचाति पचात्	-	-
	लिट्+लङ् आ०	३	-	-	अपेचिरन्
	लुङ्(स्)+लेट्	३	पक्षत्	-	-
पत्	लेट्	३	पताति पतात्	-	-
	लिट्+लिङ्	३	पपत्यात्	-	-
पद्	लुङ्(अ)लेट्	३	पदाति पदात्	-	-
	+आशी आ०	३	पदीष्ट	-	-
पश् पश्यति	लेट्	३	पश्याति पश्यात्	-	पश्यान्
		२	पश्यासि पश्याः	-	-
		१	पश्यानि	-	पश्याम
पा पिबति	लेट्	३	पिबाति पिबात्	पिबातः	-
		२	पिबासि	पिबाथः	-

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

	लिट्+लिङ्	३	पपीयात्	-	-
	लुङ्(०)+लेट्	३	-	-	पान्ति
		२	पा:	पाथ:	-
	लुङ्(०)+आशी	३	पेया:	-	-
	लुङ्+लोट्	३	पातु	पाताम्	पान्तु
		२	पाहि	पातम्	पात पातन
पा पाति	लेट्	३	पात्	पात:	-
	लुङ्(स्)+ लेट्	३	पासति	-	-
पी,पि	लिट्+लेट्	३	पीपयत्	पीपयत:	पीपयन्
		२	पीपय:	-	पीपयत
	आ०	३	-	-	पीपयन्त
	लिट्+लङ्	३	अपीपयत्	-	अपीपयन्
	आ०		-	-	अपीपयन्त
		१	अपिपे	-	अपियेम
पुष्	लिट्+लिङ्	२	पुपुष्या:	-	-
	लुङ्(०)+आशी	१	पुष्यासम्	-	पुष्यास्म
	लुङ्(अ)+लिङ्	१	पुषेयम्	-	पुषेम
पू पुनाति	लिट्+लङ्	३	अपुपोत्	-	-
पृ	लुङ्(स्)+लोट्	३	पर्षति पर्षत्	-	-
	लुङ्(स)+लोट्	२	पर्ष	-	-
	लुङ्(इष्) + लेट्	३	पारिषत्	-	-
पृच् पिपृक्ति	लेट्	२	पपृचासि	-	-
	लिङ्	१	पपृच्याम्	-	-
		३	पपृच्यात्	-	-
	लुङ्(०)+लेट्	२	पर्च:	-	-
	लुङ्(०)+लिङ्	१	पृचीय	-	पृचीमहि

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

पृण्	लिट्+लिङ्	२	पुपूर्याः	-	-
	लुङ्(०)+आशी	१	प्रियासम्	-	-
	लुङ्(चङ्)+लोट्	३	-	-	पूपुरन्तु
प्या	लुङ्(सिष्)+लिङ्	१	-	-	प्यसिषीमहि
प्रछ्	लेट्	३	पृछाति	-	पृछान्
	आ०	१	पृछै	-	-
प्रथ्	लिट्+लेट्	३	पप्रथत्	-	पप्रथन्
		२	पप्रथः	-	-
प्रा	लुङ्(०)+लेट्	२	प्राः	-	-
प्री	लिट्+लेट्	३	पिप्रयत्	-	-
		२	पिप्रयः	-	-
	लिट्+लोट्	२	पिप्रीहि	-	-
	आ०		पिप्रयस्व	-	-
	लिट्+लङ्	१	अपिप्रयम्	-	-
		२	अपिप्रेः	-	-
		३	-	-	अपिप्रयन्
	लुङ्(स्)+लेट्	३	प्रेषत्	-	-
प्रुष्	लेट्	३	प्रुष्णवत्	-	-
नुध्	लिट्+लेट्	३	बुबोधति	-	-
		२	बुबोधः	-	बुबोधथ
	लुङ्(इष्)+लेट्	३	बोधिषत्	-	-
ब्रू	लेट्	३	ब्रवत् ब्रवति	-	-
		२	ब्रवसि ब्रवः	-	-
भज्	लुङ्(स्)+लेट्	३	भक्षत्	-	-
	लुङ्(स्)+लिङ् आ०	३	भक्षीत	-	-
		१	भक्षीय	-	भक्षीमहि

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

	लुङ् (स्) + आशी	३	भक्षीष्ट	-	-
	भिद् लेट्	३	भिनदात्	-	-
		२	भिनदः	-	-
	लुङ + लेट्	३	भेदति	-	-
	लुङ्(अ)+लिङ्	१	भिदेयम्	-	-
भी	लेट्	३	भयाते	-	-
भुज्	लुङ्(०)+लेट्	३	भोजते	-	-
	लुङ्(अ)+लिङ्	१	-	-	भुजेम
	लुङ्(अ)+लोट्	२	भुज	-	-
भुज्	लिट्+लङ्	२	अबुभोजीः	-	-
भू	लिट्+लिङ्	३	बभूयात्	-	-
		२	बभूयाः	-	-
	लिट् + लोट्	३	बभूतु	-	-
	लुङ्(०) + लेट्	३	भुवत्	भूवतः	भुवन्
		२	भुवः	भूवथः	-
		१	भुवानि	-	-
	लुङ(०) + लिङ्	३	भूयात	-	-
		२	भूयाः	-	-
		१	-	-	भूयाम
	लुङ(०) + आशी	२	भूयाः	-	भूयास्त
		१	भूयासम्	-	भूयास्म
	लुङ्(०)+लोट्	२	बोधि = भोधि	भूतम्	भूत, भूतन
		३	भूतु	-	-
भृ	लुङ्(०) + आशी	१	भ्रियासम्	-	-
	लुङ्(०) + लोट्	२	-	भृतम्	-
	लुङ्(स्)+लेट्	३	भर्षत्	-	-

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

भ्राज्	लुङ्(०)+आशी	१	भ्राज्यासम्	-	-
मह्	लिट्+लेट्	२	मामहः	-	-
	लिट्+लोट्	२	मामहस्व	-	-
		३	-	-	मामहनाम्
मज्ज्	लुङ्(०)+लिङ्	३	मज्ज्यात्	-	-
मथ्	लुङ्(०)+लेट्	३	मथत्	-	-
मद्	लिट्+लोट्	३	ममत्तु	-	-
		२	ममद्धि	-	ममत्तन
	लिट्+लङ्	३	-	-	अममदुः
	लुङ्(०)+लोट्	२	मत्स्व	-	-
	लुङ्(स्) + लेट्	३	मत्सति मत्सत्	-	-
		२	-	-	मत्सथ
मन्	लिट्+लिङ्	३	ममन्यात्	-	-
	लिट्+लोट्	२	ममन्धि	-	-
	लिट्+लङ्	३	-	-	अममन्
	लुङ्(०)+लेट्	३	-	-	मनन्त
		१	-	-	मनामहे
	लुङ्(०)+लोट् आ०	२	-	-	मन्ध्वम्
	लुङ्(स्)+लेट्	३	मंसते तै	-	मंसन्ते
		२	मंससे	-	-
		१	मंसै	-	-
	लुङ्(स्)+लिङ्	३	मंसीष्ट	-	मंसीरत
	आशी०	२	मंसीष्ठाः	-	-
		१	मंसीय	-	मंसीमहि
मन्द्	लिट्+लेट्	३	ममन्दत्	-	-
	लिट्+लङ्	३	-	-	अममन्दुः

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

	क्वसु		ममन्द्वस्	स्त्री०	ममन्दुषी
	लुङ्(इष्)+लिङ्	१	-	-	मन्दिषीमहि
	लुङ्(०)+लोट्	२	माहि आ० मास्व-		-
	क्रि० वि०		मन्द् - अस्-आन=		मन्दसान
मा	लुङ्(स्)+लेट् आ०	३	मासातै	-	-
मा	लिट्+लेट्	३	मीमयत्	-	-
	लिट्+लङ्	३	अमीमेत्	-	-
मुच्	लेट्	३	मुंचाति मुंचात्	-	-
		२	मुंचासि	-	-
	आ०	३	मुच्यातै	-	-
	लिट्+लेट्	३	मुमुचत् मुमोचत्	-	-
			मुमोचति	-	-
		२	मुमुचः	-	-
	लिट्+लोट्	३	मुमोक्तु	-	-
		२	मुमुग्धि	मुमुक्तम्	मुमोचत मुमोचतम्
	लिट्+लङ्	२	-	अमुमुक्तम्	-
	लुङ्(०)+आशी आ०	३	मुचीष्ट	-	-
	लुङ्(अ)+लेट्	३	मुचाति	-	-
	आ०		मुचाते	-	-
		२	मोच	-	-
	आ०		-	-	मोचध्वम्
	लुङ्(स्)+लिङ्	१	मुक्षीय	-	-
मुद्	लुङ्(०)+लिङ्	१	-	-	मुदीमहि
	लुङ् (इष्)+आशी०आ०	२	मोदिषीष्ठाः	-	-
मृ	लुङ्(०)+लिङ्	१	मुरीय	-	-

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

मृच्	लुङ्(स्)+आशी आ०	३	मृक्षीष्ट	-	-
मृज्	लिट्+लिङ् आ०	३	मामृजीत	-	-
	लुङ्(स)+लोट्	२	-	मृक्षतम्	-
मृड्	लेट्	३	मृळाति	-	मृळात्
	लिट् + लिङ्	३	-	-	ममृधुः
मृध्	लेट्	३	मृधाति	-	-
	लुङ्(०)+लिङ्	२	मृध्याः	-	-
	लुङ्(इष्)+लेट्	३	मर्धिषत्	-	-
मृश्	यङ्लुक् +लेट्	३	मर्मृशत्	-	-
यज्	लेट्	३	यजाति यजाते	-	-
	लुङ्(०)लोट्	२	यक्ष्व	-	-
	लुङ्(स्)+लेट्	३	यक्षत्	यक्षतः	-
	आ०		यक्षते	-	
	लुङ्(स्)+लिङ्	१	यक्षीय	-	-
	लुङ्(स)+लोट्	३	-	यक्षतम्	-
यम् यछति	लेट्	३	यछात्	-	-
	लुङ्(०)+लेट्	३	यमति यमत्	-	यमन्
		२	यमः	-	-
	आ०	३	यमते	-	-
		२	यमसे	-	-
	लुङ्(०)+लिङ्	१	-	-	यमीमहि
	लुङ्(०)+आशी०	३	यम्याः	-	-
	लुङ्(०)+लोट्	२	यन्धि	यन्तम्	यन्त यन्तन
	लुङ्(अ)+लिङ्	३	यमेत्	-	-
	लुङ्(स्)+लेट्	३	यंसत्	यंसतः	यंसन्
	आ०		यंसते	-	-

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

या	लुङ्(स्)+लेट्	३	यासत्	-	-
	लुङ्(सिष्)	३	यासिषत	-	-
	लुङ्(सिष्)+आशी आ०	२	यासिषीष्ठाः	-	-
	लुङ्(सिष्)+लोट्	२	-	यासिष्टम्	यासिष्ट
याच्	लुङ्(इष्)+लेट्	३	याचिषत्	-	-
	आ०	१	-	-	यासिषामहे
यु युयोति	लेट्	३	युयवत्	-	-
	लुङ्(०)+लेट्	३	-	-	युयवन्त
	लुङ्(०)+लिङ्	३	युयात्	युयाताम्	
	लुङ्(०)+आशी	३	यूयाः	-	-
युज्	लेट्	३	युनजाति	-	युनजन्
	आ०	३	युनजते	-	-
	लिट्+लेट् आ०	३	युयोजते	-	-
	लुङ्(०)+लेट आ०		योजते	-	-
	लुङ्(०)+लिङ्	१	-	युज्याव	-
		२	-	युज्यातम्	-
	लुङ्(स्)+लोट्	२	युक्ष्व	-	-
वृज्	लिट्+लिङ्	३	-	-	ववृज्युः
	लिट्+लोट्	२	-	ववृक्ततम्	-
	क्वसु		ववर्जिवस्	स्त्री०	ववर्जुषी
	लुङ्(०)+लेट्	३	वर्जति वर्जते	-	-
	लुङ्(०)+लिङ्	१	ववृज्याम्	-	ववृज्याम
	लुङ्(०)+आशी०	३	वृज्याः	-	-
वृत्	लिट्+लेट्	३	ववर्तति ववर्तत् ववृतत्	-	-
	लिट्+लिङ्	१	ववृत्याम्	-	-

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

		२	ववृत्याः	-	-
		३	ववृत्यात्	-	-
	लिट्+लोट्	२	-	-	ववृत्तन
	लिट्+लङ्	३	-	-	अववृत्रन्
					अववृत्रन्त (आ०)
	लुङ्(०)+लेट्	३	वर्तत्	-	-
		२	-	-	वर्त्त
वृध्	लिट्+लेट्	३	वावृधाति	-	-
	आ०		वावृधते	-	-
	लिट्+लिङ्	२	वावृधीथाः	-	-
	लिट्+लोट्	२	वावृधस्व	-	-
	लिट्+लङ्	३	-	-	वावृधन्त
	लुङ्(इष)+लिङ्	१	-	-	वावृधिषीमहि
वृष्	लिट्+लोट्	२	वावृषस्व	-	-
व्यच्	लिट्+लङ्	३	विव्यचत्	-	-
	आ०		-	-	विव्यचन्त
व्यथ्	लुङ्(इष्)+लेट्	३	व्यथिषत्	-	-
व्रश्च्	लेट्	३	वृश्चाति वृश्चात्	-	-
शस्	लुङ्(इष्)+लेट्	३	शंसिषत्	-	-
		२	शंसिषः	-	-
सपर्य	नामधातु लेट्	३	सपर्यात्	-	-
युध्	लुङ्(०)+लेट्	३	योधत्	-	-
	लुङ्(०)+लोट्	३	योधि	-	-
	लुङ्(इष्)+लेट्	३	योधिषत्	-	-
	लुङ्(इष्)+लोट्	२	-	योधिष्टम्	-

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

रध्	लुङ्(अ)+लेट्	१	-	-	रधाम
	लुङ्(चङ्०)+लेट्	१	रीरधा	-	-
	+णिच्+लेट्	२	रन्धयासि	-	-
रन्	लिट्+लेट्	३	रारणत्	-	-
		२	रारणः	-	रारणत
	लिट्+लोट्	३	रारन्तु	-	-
		२	रारन्धि	-	रारन्त
	लिट्+लङ्	३	-	-	अरारणुः
रम्	लुङ्(चङ्)+लेट्	१	-	-	रीरमाम
	लेट्	३	ररते	-	-
	लुङ्(०)+लोट्	२	रास्व	-	-
	लुङ्(स्)+लेट्	३	रासत् रासते	-	रासन्
	लुङ्(स्)+लिङ्	१	रासीय	-	-
	लुङ्(स)+लोट् आ०	३	रासताम्	-	रासन्ताम्
		२	-	रासाथाम्	-
राध्	लुङ्(०)+लेट्	३	राधति राधत्	-	-
		१	-	-	राधाम
	लुङ्(०)+आशी०	१	राध्यासम्	-	राध्यास्म
रिच्	लिट्+लङ्	३	अरिरेचीत्	-	-
रिष्	लेट्	३	रिष्याति रिष्यात् रेषत्	-	-
		२	रिष्याः	-	-
	लुङ्(अ)+लेट्	२	-	-	रिषाथन
		१	-	-	रिषाम
	लुङ्(चङ्)+लिङ्	२	रीरिषेः	-	-
	लुङ्(०)+आशी आ०	३	रीरिषीष्ट	-	-
			रिरिषीष्ट	-	-
रुच्	लिट्+लिङ्	२	रुरुच्याः	-	-

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

	लुङ्(इष्)+लिङ्	१	रुचिषीय	-	-
			रोचिषीय	-	-
रुह्	लुङ्(०)+लेट्	१	-	रुहाव	-
	लुङ्(०)+लिङ्	१	-	-	रुहेम
वक्ष्	लिट्+लङ्	३	ववक्षत्	-	-
वच् विवक्ति	लुङ्(०)+आशी	३	उच्यासम्	-	-
	लुङ्(चङ्)+लेट्	३	वोचति वोचाति	-	-
		२	वोचासि	-	-
		१	वोचा	-	वोचाम
				आ०	वोचमहै
	लुङ्(चङ्)+लिङ्	१	वोचेत्	-	वोचेयुः
		२	वोचेः	वोचेतम्	-
		१	वोचेयम्	-	वोचेम
	आ०	१	वोचेय	-	वोचेमहि
	लुङ्(चङ्)+लोट्	३	वोचतु	-	-
		२	वोचतात्	वोचतम्	वोचत
वद्	लेट्	३	वदाति	-	वदान्
		२	वदासि वदाः	वदाथः	
		१	वदानि	-	वदाम
	लुङ्(०)+आशी०	१	वद्यासम्	-	-
	लुङ्(इष्)+लेट्	२	वादिषः	-	-
वध्	लङ्(०)+आशी	१	वध्यासम्	-	-
	लुङ्(०)+लिङ्	३	वध्यात्	-	-
	लुङ्(इष्)+लेट्	२	वधिषः	-	-
वन्	लेट्	३	वनाति	-	-
		२	वनाः	-	-
		१	-	वनाव	वनाम

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

	लिट्+लेट्	३	वावनत्	-	-
	लिट्+लोट्	२	वावन्धि	-	-
	लुङ्(स्)+लेट्	३	वंसत् वंसते	-	-
		१	-	-	वंसाम
	लुङ्(स्)+लिङ्	१	-	-	वंसीमहि वसीमहि
	लुङ्(इष्)+लेट्	३	वनिषत्	-	-
	आ०		-	-	वनिषन्त
	लुङ्(इष्)+आशी	३	वनिषीष्ट	-	-
	लुङ्(सिष्)+लिङ्	१	वंसिषीय	-	-
	सन्+लेट्	३	विवासात्	-	-
वन्द्	लुङ्(रष्)+लिङ्	१	-	-	वन्दिषीमहि
वम्	लेट्	३	-	-	वमन्
वस्	क्वसु		ऊषिवस्	स्त्री०	ऊषुषी
वह्	लुङ्(०)+लिङ् आ०	३	उहीत	-	-
	लुङ्(०)+लोट्	२	-	वोढम् वोढाम्	आ० वोढ्वम्
	लुङ्(स्)+लेट्	३	वक्षति वक्षत्	वक्षतः	वक्षन्
		२	वक्षः	वक्षथः	-
वाश्	लिट्+लङ्	३	-	अवावशीताम्	अवावशन्त
विद्	लेट्	३	वेदति वेदत्	-	-
		२	वेदः	-	-
विद्	लिट्+लेट्	३	विविदत्	-	-
	लुङ्(अ)+लेट्	३	विदात्	-	-
		२	विदाः	विदाथः	विदाथ
	लुङ्(अ)+लिङ्	३	विदेत्	-	-
		१	विदेयम्	-	विदेम

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

	आ०		विदेय		
	लुङ्(अ)+आशी०	३	विदेष्ट आ०	-	-
	लुङ्(अ)+लोट्	२	-	विदतम्	-
विश्	लिट्+लिङ्	२	विविश्याः	-	-
	लिट्+लङ्	२	अविवेशीः	-	-
विष्	लिट्+लङ्	२	अविवेषीः	-	-
	यङ्लुक्+लिङ्	३	विवेष्यात्	-	-
वि	लेट्	३	वयति	-	-
	लुङ्(स्)+लेट्	३	वेषत्	-	-
वृ	लिट्+लङ्	३	अवावरीत्	-	-
	लुङ्(०)+लोट्	२	वृधि	वर्तम्	वर्त
	लुङ्(स्)+लेट्	२	-	वर्षथः	-
वृ	लुङ्(०)+लेट्	३	वरत्	-	वरन्त
		२	वरः	-	-
	लुङ्(०)+लिङ् आ	३	वुरीत	-	-
सह्	लिट्+लेट्	३	सासहत्	-	-
		२	सासहः	-	-
	क्वसु		सासह्वस्	साह्वस्	
	कानच्		सासहान	सेहान	
	लिट्+लिङ्	३	सासह्यात्	-	-
		१	-	-	सासह्याम
	लिट्+आशी आ०	२	सासहीष्ठाः	-	-
	लिङ्(०)+लिङ्	२	सह्याः	-	-
		१	-	-	सासह्याम
	लुङ्(०)+आशी	३	सह्याः	-	-
	लुङ्(स्)+लेट्	३	सक्षति सक्षत्	-	-
		१	-	-	सक्षाम

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

	आ०	३	सक्षते	-	-
	लुङ्(स्)+लिङ् आ	१	सक्षीय	-	-
	लुङ्(इष्)+लिङ्	१	-	सहिषीवहि	सहिषीमहि
सा(सो)	लुङ्(०)+लेट्	३	सात्	-	-
स्यति	लुङ्(०)+लिङ्	१	-	-	सीमहि
	लुङ्(०)+लोट्	२	साहि	-	-
	लुङ्(अ)+लिङ्	३	सेत्	-	-
साध्	लुङ्(चङ्)+लेट्	३	सीषधाति	-	-
		१	-	-	सीषधाम
सि	लुङ्(०)+लोट्	२	-	सितम्	-
सिच्	लुङ्(अ)+लेट्	१	-	-	सिचामहे
सु सुनोति	लेट्	३	सुनवत्	-	-
		१	-	-	सुनवाम
	लिट्+लङ्	३	-	-	असुषवुः असुषुवुः
	लुङ्(०)+लोट्	३	सोतु	-	-
		२	-	सुतम्	सोत सोतन
	लेट्	३	सुवाति	-	-
सू	लेट्	३	सुवाति	-	-
	लिट्+लङ्	३	असुषोत्	-	असुषवुः
	लुङ्(इष)+लेट्	३	साविषत्	-	-
सूद्	लिट्+लेट्	३	सुषूदत् सुषूदति	-	-
		२	सुषूदः	-	-
	लिट्+लोट्	२	-	-	सुषूदत
सृ	लुङ्(अ)+लोट्	२	सर	-	-
	लुङ्(स्)+लेट्	३	सर्षत्	-	-
सृज्	लुङ्(स्)+लेट्	३	स्रक्षते	-	-

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

स्तु	लेट्	३	स्तवात्	-	-
		२	-	-	स्तवथ
		१	-	-	स्तवाम
	आ०		स्तवै	-	-
	लिट्+लेट्	३	तुष्टवत्	-	-
	लिट्+लङ्	१	अतुष्टवम्	-	-
	लुङ्(स्)+लेट्	३	स्तोषत्	-	-
		१	स्तोषाणि	-	स्तोषाम
स्तृ	लुङ्(०)+लेट्	३	स्तरते	-	-
		१	-	-	स्तरामहे
	लुङ्(स्)+लिङ्	१	स्तृषीय	-	-
स्था	लङ्(०)+लेट्	३	स्थाति स्थात्	स्थातः	-
		२	स्थाः	-	-
	लुङ्(०)+लिङ्	१	-	-	स्थेयाम
		२	-	स्थातम्	स्थात
स्पृ	लुङ्(०)+लेट्	३	स्परत्	-	-
	लुङ्(०)+लोट्	२	स्पृधि	-	-
स्पृध्	लिट्+लङ्	२	-	अपस्पृधेथाम्	-
स्पृश्	लिट्+लेट्	३	पस्पर्शत्	-	-
	लुङ्(चङ्)+लेट्	३	पिस्पृशाति	-	-
स्फुर	लेट्	३	-	-	स्फुरान्
स्रंस्	लुङ्+लिङ्	१	-	-	स्रसेम
स्रु	लिट्+लङ्	३	असुस्रोत्	-	-
स्वंज्	लिट्+लङ्	३	असस्वजत्	-	-
स्वद्	लेट्	३	स्वदाति	-	-
हन्	लेट्	३	हनाति हनत्	-	हनन्
		२	हनः	-	हनाथ

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

		१	-	हनाव	हनाम
	लिट्+लेट्	३	जघनत्	-	-
	यङ्लुक+लेट्	३	जंघनत्	-	आ० जंघनन्त
		२	जंघनः	-	-
		१	जंघनानि	जंघानाव	-
	+लोट्	२	जंघनीहि	-	-
हर्य	लेट्	२	हर्यासि हर्याः	-	-
हिंस्	लिट्+लङ्	२	जिहिंसीः	-	-
हृ	लेट्	३	हराति	-	-
ह्वर् ह्वरते	लट्	३	जर्ह्वरीति >जुर्भुरीति	-	
	लिट्	३	जह्वार >जभार	-	जह्वु > जभ्रु
		२	जभर्थ	-	-
	आ	३	जभ्रे	-	जभ्रिरे
		२	जभृषे	-	-
	लिट्+लेट्	३	जभरत्	-	-
	लिट्+लङ्	२	-	-	अजभर्तन
	यङ्लुक लट्	३	-	जर्भृतः	-
	लेट्	३	-	-	आ० जुहुरन्त
		२	जुहुरः	-	-
	आज्ञार्थक	२	जुहुर्थाः	-	-
	लोट्	३	-	-	भुरन्तु
	लुङ्(चङ्)	२	जिह्वरः	जिह्वरतम्	-
	लुङ्(स्)	३	ह्वार्षीत्	-	-
		२	ह्वाः	-	-
	कानच्		जुहुराण	-	-
	लुङ्(इष्)	३	-	-	ह्वारिषुः

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

डॉ० मधुसूदन मिश्र (जन्म २१ सितम्बर, १९३३) की यह अन्तिम कृति है। जब से इनका सम्पर्क वैदिक भाषा से हुआ तभी से ये हिन्दी में एक वैदिक व्याकरण लिखने को सोचने लगे थे। पाश्चात्य ढंग से लिखे गये वैदिक व्याकरण को तो ये समझ गये थे, लेकिन उसे हिन्दी में कैसे उतार जाये और भारतीय छात्रों को कैसे बोधगम्य बनाया जाये—यह इनकी समस्या थी अथक परिश्रम से पाश्चात्य विद्वानों ने वैदिक व्याकरण को ग्रीक-लैटिन मोडेल प ढाल दिया था।

लगभग पचास वर्षों तक ये अपने हिन्दी वाले वैदिक व्याकरण को लिखते औ मिटाते रहे। यह अन्तिम लिखावट है औ यह पाणिनीय पद्धति पर आधारित है। आश है कि भारतीय छात्रों को यह बोधगम होगा।

अध्यापन कार्य इन्होंने कुछ ही सम तक किया, लेकिन अध्ययन और लेख जीवन के सन्ध्याकाल में भी चल रहे शायद सूर्यास्त तक चलता रहेगा।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

ISBN 93-80651-50-3

विद्यानिधि प्रकाशन

डी-10/1061 (समीप श्रीमहागौरी मन्दिर)

खजूरी खास, दिल्ली-110094

e-mail : vidyanidhiprakashan@hotmail.com

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.